

अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन  
बनाम  
मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद)

भाग - 3

# अभ्यास दर्शन

- प्रणेता -  
ए. नागराज

प्रकाशक :  
जीवन विद्या प्रकाशन  
श्री भजनाश्रम, श्री नर्मदांचल, अमरकंटक  
जिला - शहडोल (म. प्र.)

लेखक :  
ए. नागराज

© सर्वाधिकार  
प्रणेता एवं लेखक के  
पास सुरक्षित

संस्करण : द्वितीय

मुद्रण : प्रथम - जुलाई 2004  
द्वितीय - मार्च 2010

सहयोग राशि :  
100/- रुपये

मुद्रक :  
जीवन विद्या संस्थान  
अमरकंटक (म. प्र.)

ग्राफिक्स-डिजायनिंग : आकाश कम्प्यूटर, रायपुर दूरभाष-94252-04130

## विकल्प

1. अस्थिरता, अनिश्चयता मूलक भौतिक-रासायनिक वस्तु केन्द्रित विचार बनाम विज्ञान विधि से मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। रहस्य मूलक आदर्शवादी चिंतन विधि से भी मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। दोनों प्रकार के वादों में मानव को जीव कहा गया है।

विकल्प के रूप में अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन विधि से मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद में मानव को ज्ञानावस्था में होने का पहचान किया एवं कराया।

मध्यस्थ दर्शन के अनुसार मानव ही ज्ञाता (जानने वाला), सहअस्तित्वरूपी अस्तित्व जानने-मानने योग्य वस्तु अर्थात् जानने के लिए संपूर्ण वस्तु है यही दर्शन ज्ञान है इसी के साथ जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहित सह-अस्तित्व प्रमाणित होने की विधि अध्ययन गम्य हो चुकी है।

अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान, मध्यस्थ दर्शन, सह-अस्तित्ववाद-शास्त्र रूप में अध्ययन के लिए मानव सम्मुख मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

2. अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन के पूर्व मेरी (ए.नागराज, अग्रहार नागराज, जिला हासन, कर्नाटक प्रदेश, भारत) दीक्षा अध्यात्मवादी ज्ञान वैदिक विचार सहज उपासना कर्म से हुई।

3. वेदान्त के अनुसार ज्ञान “ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या” जबकि ब्रह्म से जीव जगत की उत्पत्ति बताई गई।

उपासना :- देवी देवताओं के संदर्भ में।

कर्म :- स्वर्ग मिलने वाले सभी कर्म (भाषा के रूप में)।

मनु धर्म शास्त्र में :- चार वर्ण चार आश्रमों का नित्य कर्म प्रस्तावित है।

कर्म काण्डों में :- गर्भ संस्कार से मृत्यु संस्कार तक सोलह प्रकार के कर्म काण्ड मान्य है एवं उनके कार्यक्रम है।

इन सबके अध्ययन से मेरे मन में प्रश्न उभरा कि -

4. सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म से उत्पन्न जीव जगत मिथ्या कैसे है ? तत्कालीन वेदज्ञों एवं विद्वानों के साथ जिज्ञासा करने के क्रम में मुझे :-

समाधि में अज्ञात के ज्ञात होने का आश्वासन मिला। शास्त्रों के समर्थन के आधार पर साधना, समाधि, संयम कार्य सम्पन्न करने की स्वीकृति हुई। मैंने साधना, समाधि, संयम की स्थिति में संपूर्ण अस्तित्व सह-अस्तित्व होने, रहने के रूप में अध्ययन, अनुभव विधि से पूर्ण, समझ को प्राप्त किया जिसके फलस्वरूप मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद वाङ्मय के रूप में विकल्प प्रकट हुआ।

5. आदर्शवादी शास्त्रों एवं रहस्य मूलक ईश्वर केंद्रित चिंतन ज्ञान तथा परम्परा के अनुसार- ज्ञान अव्यक्त अनिर्वचनीय।

मध्यस्थ दर्शन के अनुसार - ज्ञान व्यक्त वचनीय अध्ययन विधि

से बोध गम्य, व्यवहार विधि से प्रमाण सर्व सुलभ होने के रूप में स्पष्ट हुआ।

6. अस्थिरता, अनिश्चयता मूलक भौतिकवाद के अनुसार वस्तु केंद्रित विचार में विज्ञान को ज्ञान माना जिसमें नियमों को मानव निर्मित करने की बात कही गयी है। इसके विकल्प में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन ज्ञान के अनुसार अस्तित्व स्थिर, विकास और जागृति निश्चित सम्पूर्ण नियम प्राकृतिक होना, रहना प्रतिपादित है।
7. अस्तित्व केवल भौतिक रासायनिक न होकर भौतिक रासायनिक एवं जीवन वस्तुयें व्यापक वस्तु में अविभाज्य वर्तमान है यही “मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद” शास्त्र सूत्र है।

### सत्यापन

8. मैंने जहाँ से शरीर यात्रा शुरू किया वहाँ मेरे पूर्वज वेदमूर्ति कहलाते रहे। घर-गाँव में वेद व वेद विचार संबंधित वेदान्त, उपनिषद तथा दर्शन ही भाषा ध्वनि-धुन के रूप में सुनने में आते रहे। परिवार परंपरा में वेदसम्मत उपासना-आराधना-अर्चना-स्तवन कार्य सम्पन्न होता रहा।
9. हमारे परिवार परंपरा में शीर्ष कोटि के विद्वान सेवा भावी तथा श्रम शील व्यवहाराभ्यास एवं कर्माभ्यास सहज रहा जिसमें से श्रमशीलता एवं सेवा प्रवृत्तियाँ मुझको स्वीकार हुआ। विद्वता पक्ष में प्रश्नचिन्ह रहे।
10. प्रथम प्रश्न उभरा कि -  
ब्रह्म सत्य से जगत व जीव का उत्पत्ति मिथ्या कैसे ?

दूसरा प्रश्न -

ब्रह्म ही बंधन एवं मोक्ष का कारण कैसे ?

तीसरा प्रश्न -

शब्द प्रमाण या शब्द का धारक वाहक प्रमाण ?

आप्त वाक्य प्रमाण या आप्त वाक्य का उद्गाता प्रमाण ?

शास्त्र प्रमाण या प्रणेता प्रमाण ?

समीचीन परिस्थिति में एक और प्रश्न उभरा

चौथा प्रश्न -

भारत में स्वतंत्रता के बाद संविधान सभा गठित हुआ जिसमें राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय-चरित्र का सूत्र व्याख्या ना होते हुए जनप्रतिनिधि पात्र होने की स्वीकृति संविधान में होना।

वोट-नोट (धन) गठबंधन से जनादेश व जनप्रतिनिधि कैसा ?

संविधान में धर्म निरपेक्षता - एक वाक्य एवं उसी के साथ अनेक जाति, संप्रदाय, समुदाय का उल्लेख होना।

संविधान में समानता - एक वाक्य, उसी के साथ आरक्षण का उल्लेख और संविधान में उसकी प्रक्रिया होना।

जनतंत्र - शासन में जनप्रतिनिधियों की निर्वाचन प्रक्रिया में वोट-नोट का गठबंधन होना।

ये कैसा जनतंत्र है ?

11. इन प्रश्नों के जंजाल से मुक्ति पाने को तत्कालीन विद्वान, वेदमूर्तियों, सम्मानीय ऋषि-महर्षियों के सुझाव से -

- (1) अज्ञात को ज्ञात करने के लिए समाधि एक मात्र रास्ता बताये जिसे मैंने स्वीकार किया।
- (2) साधना के लिए अनुकूल स्थान के रूप में अमरकण्टक को स्वीकारा।
- (3) सन् 1950 से साधना कर्म आरम्भ किया।  
सन् 1960 के दशक में साधना में प्रौढ़ता आया।
- (4) सन् 1970 में समाधि सम्पन्न होने की स्थिति स्वीकारने में आया। समाधि स्थिति में मेरे आशा-विचार-इच्छायें चुप रहीं। ऐसी स्थिति में अज्ञात को ज्ञात होने की घटना शून्य रही यह भी समझ में आया। यह स्थिति सहज साधना हर दिन बारह (12) से अठारह (18) घंटे तक होता रहा।

समाधि, धारणा, ध्यान क्रम में संयम स्वयम् स्फूर्त प्रणाली मैंने स्वीकारा। दो वर्ष बाद संयम होने से समाधि होने का प्रमाण स्वीकारा। समाधि से संयम सम्पन्न होने की क्रिया में भी 12 घण्टे से 18 घण्टे लगते रहे। फलस्वरूप संपूर्ण अस्तित्व सह-अस्तित्व सहज रूप में रहना, होना मुझे अनुभव हुआ। जिसका वाङ्मय “मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद” शास्त्र के रूप में प्रस्तुत हुआ।

12. सहअस्तित्व :- व्यापक वस्तु में संपूर्ण जड़-चैतन्य संपृक्त एवं नित्य वर्तमान होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- परमाणु में विकासक्रम के रूप में भूखे एवं अजीर्ण परमाणु एवं परमाणु में ही विकास पूर्वक तृप्त परमाणुओं के रूप में ‘जीवन’ होना, रहना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई- ‘जीवन’

रूप में होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- भूखे व अजीर्ण परमाणु अणु व प्राणकोषाओं से ही सम्पूर्ण भौतिक रासायनिक प्राणावस्था रचनायें तथा परमाणु अणुओं से रचित धरती तथा अनेक धरतियों का रचना स्पष्ट होना समझ में आया।

13. अस्तित्व में भौतिक रचना रुपी धरती पर ही यौगिक विधि से रसायन तंत्र प्रक्रिया सहित प्राणकोषाओं से रचित रचनायें संपूर्ण वन-वनस्पतियों के रूप में समृद्ध होने के उपरान्त प्राणकोषाओं से ही जीव शरीरों का रचना रचित होना और मानव शरीर का भी रचना सम्पन्न होना व परंपरा होना समझ में आया।

14. सहअस्तित्व में ही :- शरीर व जीवन के संयुक्त रूप में मानव परंपरा होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में, से, के लिए :- सहअस्तित्व नित्य प्रभावी होना समझ में आया। यही नियतिक्रम होना समझ में आया।

15. नियति विधि :- सहअस्तित्व सहज विधि से ही :-

- पदार्थ अवस्था
- प्राण अवस्था
- जीव अवस्था
- ज्ञान अवस्था
- और
- प्राणपद
- भ्रान्ति पद
- देव पद

- दिव्य पद
- विकास क्रम, विकास
- जागृति क्रम, जागृति

तथा जागृति सहज मानव परंपरा ही मानवत्व सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी नित्य वैभव होना समझ में आया। इसे मैंने सर्वशुभ सूत्र माना और सर्वमानव में शुभापेक्षा होना स्वीकारा फलस्वरूप चेतना विकास मूल्य शिक्षा, संविधान, आचरण व्यवस्था सहज सूत्र व्याख्या, मानव सम्मुख प्रस्तुत किया हूँ।

भूमि स्वर्ग हो, मानव देवता हो  
धर्म सफल हो, नित्य शुभ हो।

- ए. नागराज

## प्राक्कथन

अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान पूर्वक सभी आयाम, कोण, दिशा व परिप्रेक्ष्यों में समाधान और प्रमाण को प्रमाणित करने के लिए अभ्यास दर्शन की आवश्यकता को महसूस किया गया।

अस्तित्व में जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान व मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान इस अभ्यास दर्शन के पहले मानव-व्यवहार दर्शन में स्पष्ट किया जा चुका है। यही प्रसन्नता के लिए तथ्य रहा कि हम रहस्य मुक्त विधि से अभ्यास कर सकते हैं। हर विधा में अभ्यास सम्पन्न, प्रमाण पूत होने के पहले से ही अध्ययन विधि से ऊपर कहे दर्शन के सर्वसुलभ होने की संभावना को और सर्वसुलभ होने की आवश्यकता को अनुभव करते हुए इस अभ्यास दर्शन को मानव के सम्मुख रखते हुए प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

मेरा विश्वास है कि हर मानव समझदार, समाधान व समृद्धपूर्वक प्रमाणित होना चाहता है और परिवार व समग्र व्यवस्था में भागीदार होना चाहता है। इस उद्देश्य के लिए यह अभ्यास दर्शन प्रेरक होगा और फलतः उपकार होगा इसी सुनिश्चयता के साथ धरती स्वर्ग हो, मानव देवता हो, मानव धर्मरूपी सुख, समाधान सर्वसुलभ हो, नित्य शुभ हो।

ए. नागराज

वैशाख शुक्ल तृतिया, गुरुवार  
श्री संवत् 2061 तदनुसार 22.4.2004

प्रणेता-लेखक : मध्यस्थदर्शन  
(सह-अस्तित्ववाद)  
दिनांक : 22.04.2004

## अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय वस्तु	पृ.क्र.
1.	मानव में अभ्युदार्थ अभ्यास की अनिवार्यता	1-20
2.	अखण्ड समाज गति सहज अनिवार्यता	21-33
3.	जनाकाँक्षा को सफल बनाने योग्य शिक्षा व व्यवस्था	34-50
4.	मानव संस्कृति	51-69
5.	आचरण पूर्णता ही शिक्षा का लक्ष्य है	70-81
6.	विकास व जागृति ही वैभव क्रम है	82-99
7.	मानव में संस्कार प्रक्रिया	100-112
8.	अखण्ड सामाजिकता के लिए चेतना विकास मूल्य शिक्षा अनिवार्य है	113-121
9.	कुशलता, निपुणता एवं पांडित्य ही ज्ञानावस्था की मूल पूंजी है	122-133
10.	संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था	134-141
11.	पांडित्य ही मनुष्य में विशिष्टता है	142-144
12.	समाज संरचना का आधार “मूल्य-त्रय” ही है	145-153
13.	वर्तमान में विश्वास ही अभयता है	154-158
14.	व्यक्तित्व और प्रतिभा की चरमोत्कर्षता में ही प्रेमानुभूति होती है	159-164
15.	उत्पादन एवं व्यावहारिकता अखण्ड समाज में, से, के लिए अपरिहार्य है	165-180
	परिशिष्ट	181-183

## मानव में अभ्युदयार्थ अभ्यास की अनिवार्यता

जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति के आधारभूत व्यापक सत्ता में स्मरण करते हुए “अभ्यास-दर्शन” का विश्लेषण करता हूँ।

**जड़-चैतन्य प्रकृति रूपी क्रियायें व्यापक रूपी सत्ता में सम्पृक्त ही है।**

चैतन्य अवस्था में ही क्रिया-पूर्णता एवं आचरण-पूर्णता की संभावना आवश्यकता है जिसके लिए मानव में अभ्यास की अनिवार्यता है। अनुमान क्षमता ही अभ्यास का आधार है। अनुभव से अधिक उदय ही अनुमान है। यही निरन्तर अभ्यास सूत्र है।

**अभ्युदय (सर्वतोमुखी समाधान) ही अभ्यास की प्रत्यक्ष उपलब्धि और प्रमाण है।**

ज्ञानावस्था की निर्भ्रम इकाई में व्यापक सत्ता में अनुभव ज्ञान एवं प्रकृति-दर्शन प्रसिद्ध है। सत्ता में संपृक्त प्रकृति अविभाज्य है, यही सह-अस्तित्व में अनुभव ज्ञान है। यही अभ्युदय-पूर्णता है, साथ ही मानव की चिरवाँछा भी इसलिए किसी न किसी अंश में व्यापक सत्ता में अनुभूति एवं प्रकृति की व्यंजना (रूप, गुण, स्वभाव सहज अधिकार एवं धर्म ग्राही व प्रदायी क्षमता) सम्पन्न रहना प्रसिद्ध है। यही अभ्युदय की स्पष्ट संभावना है।

**व्यंजनीयता ही दर्शन क्षमता एवं अनुभव ही आनन्द है।**

## व्यंजनीयता एवं व्यंजनीत्पादीयता ही संवेदना हैं।

व्यंजनीयता ही अभ्युदय की कामना का आधार है। मन, वृत्ति, चित्त एवं बुद्धि में ही व्यंजित होने, व्यंजित करने की क्षमता व प्रक्रिया पाई जाती है। यही संस्कार व विचार-क्षमता है।

चैतन्य इकाई में ही संचेतना को प्रकट करने की योग्यता है, जबकि यह योग्यता रासायनिक (जड़) क्रियाकलाप में नहीं है।

अभ्युदय की कामना ज्ञानावस्था की इकाई में पायी जाती है। ज्ञानावस्था की चैतन्य इकाई में ही अभ्यास के प्रति निष्ठा एवं लक्ष्य के प्रति जिज्ञासा रहती है।

अभ्युदयार्थ किया गया आयास (आकाँक्षा और हर्ष सहित किया गया प्रयास) ही अभ्यास है। **क्यों, कैसे का उत्तर पाने के लिए किया गया बौद्धिक, वाचिक, कायिक क्रियाकलाप अभ्यास है। अर्थात् समाधान सम्पन्न होने के लिए अभ्यास है।**

मूल प्रवृत्तियों के परिमार्जन पूर्वक कुशलता एवं पांडित्यपूर्ण व्यवहार ही अभ्यास का प्रधान लक्षण है।

व्यक्ति की मूल-प्रवृत्ति विचार के रूप में, परिवार में आचरण के रूप में, समाज में सम्मति, प्रोत्साहन एवं भागीदारी के रूप में, राष्ट्र में शिक्षा व व्यवस्था के रूप में एवं अन्तर्राष्ट्रीय मूल-प्रवृत्ति परिस्थिति मानव चेतना के रूप में प्रत्यक्ष है। ये पाँचों स्थितियाँ मानवीय संचेतना में समन्वित, सफल होना पाया जाता है एवं इसके विपरीत अमानवीय प्रवृत्तिवश समस्त समस्याएँ दुःख रूप में परिवर्तित होती है।

सर्वतोमुखी समाधान ही अभ्युदय है। मानव में समाहित चारों

आयाम एवं पाँचों स्थितियाँ सर्वतोमुखी है। इन्हीं की एक-सूत्रता ही सर्वतोमुखी समाधान है। यही बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि श्रमपूर्वक सम्पन्न होता है।

मानव अभ्युदयपूर्ण होते तक अभ्यास के लिए बाध्य है। अभ्युदय ही मानव की आशा, आकाँक्षा एवं लक्ष्य सहज प्रमाण है। यही जागृति क्रम सहित जागृति पूर्वक व्यवहार में पायी जाने वाली सत्यता है। इसके अतिरिक्त और कोई व्यवस्था नहीं है। यही सबका अभीष्ट भी है।

**मानव जन्म से ही न्याय का याचक, सही कार्य-व्यवहार करने का इच्छुक और सत्यवक्ता होता है। साथ ही वह प्रत्येक कार्य को सही रूप में व्यवहार प्रदान करना चाहता है, जो मानव सहज वस्तुगत सत्य है। यही अभ्यास के लिए अन्तःप्रेरणा है।**

न्यायदर्शी व न्याय प्रदायी क्षमता से सम्पन्न होते तक मानव में सभी स्तरों पर स्थिरता, समाधान, संतुलन एवं संयम नहीं पाया जाता है।

मानव में उत्पादन, व्यवहार, प्रयोग अनुभव एवं प्रमाणित करने के लिए चिन्तनाभ्यास प्रसिद्ध है।

उत्पादन ही कर्माभ्यास, व्यवहार ही विचाराभ्यास एवं अनुभव संयोग ही चिन्तनाभ्यास है।

विचार के अभाव में उत्पादन व व्यवहार शरीर द्वारा संपन्न नहीं होता है।

चैतन्य शक्तियों की प्रखरता से परिपूर्ण होने के लिए अनुभव मूलक चिंतन सहित अभ्यास अनिवार्य है।

मानव जागृत होने के लिए अभ्यास करता है। यह क्रम जागृति पूर्णता तक रहता है।

कर्माभ्यास के लिए भौतिक शास्त्र, व्यवहाराभ्यास के लिए बौद्धिक शास्त्र एवं चिन्तनाभ्यास के लिए अनुभव मूलक मध्यस्थ दर्शन प्रसिद्ध है।

**नियंत्रण को व्यंजित कराने योग्य प्रसारण-क्रिया ही शास्त्र है। प्रसारण की चरितार्थता ही व्यंजनीयता है।**

सह-अस्तित्व में अनुभव बोध एवं रूप, गुण, स्वभाव तथा धर्मात्मक प्रकृति की स्थितिवत्ता में व्यंजित कराने हेतु प्रसारण एवं व्यंजनीयता है।

व्यंजनीयता ही भास, आभास एवं प्रतीति अनुभव प्रमाण है। यह संस्कार एवं अध्ययन का फल है और साथ ही अभ्यास एवं अध्ययन के लिए प्रेरणा एवं गति भी है। सम्पूर्ण व्यंजनीयता शब्द एवं अर्थों को, स्थिति-गति रूप में स्वीकार करने की क्रिया है। यह सम्पूर्ण मानव में सार्थक होने वाली स्थिति नित्य समीचीन है।

चैतन्य प्रकृति रूपी मानव द्वारा मानव लक्ष्य के अर्थ में अर्जित स्वभाव ही संस्कार है। आगन्तुक अथवा भ्रमित प्रवृत्ति तब तक भावी है, जब तक संस्कार समझदारी पूर्ण न हो जाये।

क्रिया-शक्ति में कर्माभ्यास, इच्छाशक्ति में व्यवहाराभ्यास एवं शास्त्राभ्यास तथा ज्ञान शक्ति में चिन्तन एवं प्रमाण प्रस्तुत करने अभ्यास प्रसिद्ध है।

“जिस तथ्य को मानव समझ चुका है, समझ रहा है या समझने के लिए बाध्य है, वही प्रसिद्ध है।”



कर्माभ्यास से प्रतिफल, व्यवहाराभ्यास से सह-अस्तित्व सहज प्रमाण और चिन्तनाभ्यास से ज्ञान, विवेक सहज प्रमाण और संस्कार में गुणात्मक परिवर्तन फलतः अनुभव सहज प्रमाण है जो प्रत्यक्ष है।

कर्माभ्यासपूर्वक भौतिक समृद्धि, व्यवहाराभ्यासपूर्वक बौद्धिक समाधान एवं चिन्तनाभ्यास और अनुभवपूर्वक परमानन्द निरंतरता है।

**“जड़-चैतन्यात्मक स्थितिवत्ता में जो व्यवस्था है वही नियतिक्रम है।”**

मानव जीवन में न्याय-सम्बद्धता व्यवहार में सार्थक है।

नियंत्रण पूर्वक व्यवस्था ही न्याय शास्त्र एवं नियंत्रण क्रम-व्यवस्था है। नियंत्रण ही विधि और क्रम ही नीति है और समाधान ही व्यवस्था है। आचरण रूपी विधि एवं व्यवस्था मानव इकाई में पूर्णता सहज प्रमाण है यह जागृत इकाई का स्वनियंत्रित होने का स्वभाव है। मानव इकाई में जीवन सहज गठन-पूर्णता, क्रिया-पूर्णता एवं आचरण-पूर्णता प्रमाणित होती है इसलिए पूर्णता की दिशा में व्यवस्था का अनुसरण ही अभ्यास का प्रधान लक्षण है।

नियंत्रण विहीन व्यवस्था नहीं है। विकास एवं हास नियंत्रणपूर्वक ही है, इसीलिए सम-मध्यस्थात्मक व्यवस्था विकास की ओर प्रगति एवं विषमतायुक्त व्यवस्था हास की ओर विगतित होनी पायी जाती है।

जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का अभीष्ट विकास क्रम, विकास एवं जागृति क्रम, जागृति पूर्णता ही है, इसलिए प्रत्येक इकाई का हास व विकास एवं जागृति उनकी मौलिकता से प्रमाणित है।

मौलिकता ही इकाई का स्वभाव, स्वभाव ही आचरण है।

प्रकृति में ऐसी कोई इकाई नहीं है जिसमें आचरण न हो।

मानव में अमानवीयता, मानवीयता, अतिमानवीयता सीमान्तवर्ती स्वभाव और आचरण प्रत्यक्ष है।

मानव मध्यस्थ क्रिया के अनुसरण-पूर्वक ही जागृतिशील है। यह जागृति की एक अवस्था का द्योतक है। मानव में ही मध्यस्थ को अनुसरण करने का अवसर है। सम-विषम के नियन्त्रण का आधार मध्यस्थ है, साथ ही मध्यस्थ क्रिया ही समाधान है।

पदार्थावस्था में सामूहिक, प्राणावस्था में वर्गीय, जीवावस्था में जातीय एवं ज्ञानावस्था में भ्रमवश सामुदायिक बाध्यताएं दृष्टव्य हैं। तथा जागृतिपूर्वक अखण्डता सार्वभौमता सूत्र व्याख्या है।

**“जागृत मानव में अखंडता ही सामाजिकता है।”**

मानव ही इस पृथ्वी पर अन्य प्रकृति से विकसित है। मध्यस्थता के बिना सामाजिकता सिद्ध नहीं है। अखण्ड सामाजिकता के बिना मानव आश्वस्त नहीं है।

मानव के चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों में मध्यस्थता सहज सुलभ है। मध्यस्थता अनुशीलन के बिना मानव में अखंडता नहीं है। मध्यस्थता आवेश नहीं है, इसके अनुसरण पर्यन्त जागृति का अभाव नहीं है।

रूप, गुण, स्वभाव, धर्म प्रगटन क्षमता ही प्रत्येक इकाई के विकास को स्पष्ट करती है। जड़ प्रकृति में रूप और गुण; जीवावस्था में रूप, गुण एवं स्वभाव; ज्ञानावस्था में रूप, गुण, स्वभाव और धर्म का प्रकटन पाया जाता है। पदार्थावस्था रूप प्रधान, प्राणावस्था गुण प्रधान, जीवावस्था स्वभाव प्रधान और ज्ञानावस्था धर्म प्रधान प्रकटन

है।

“जो जिसको प्रकट करता है, उसमें उसके स्वागत (ग्रहण) करने की क्षमता रहती है।”

रूप का मिलन रूप से, गुण का मिलन गुण से, स्वभाव का मिलन स्वभाव से, धर्म का मिलन धर्म से प्रत्यक्ष है।

**प्रत्येक मानव स्वतंत्र, स्वतंत्रित एवं स्वतंत्रतापूर्ण होना चाहता है।**

स्वतंत्र-पूर्णता का प्रत्यक्ष रूप ही है ज्ञान विवेक सहित विज्ञान का प्रयोग, जिसमें ही नियमपूर्ण उत्पादन, न्यायपूर्ण व्यवहार, धर्मपूर्ण विचार एवं सत्यमय अनुभूति है। यही स्वतंत्रता सहज प्रमाण है, जो जागृति पर आधारित है।

स्वतंत्रताधिकार मानवीयता पूर्ण मानव, देव मानव तथा दिव्य मानवीयता कोटि में सफल होता है।

अनुभव बोध से संकल्प, संकल्प से निष्ठा, निष्ठा से प्रतिबद्धता, प्रतिबद्धता से प्रबुद्धता, प्रबुद्धता से बोध, बोध से संकल्प, संकल्प से क्षमता, क्षमता से जागृति, जागृति से स्वीकृति एवं प्रमाण है।

प्रबुद्धता ही समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद एवं अनुभवात्मक अध्यात्मवाद की प्रस्थापना, स्थापना एवं अक्षुण्णता का प्रत्यक्ष रूप है।

समाधानात्मक भौतिकवाद में अर्थ के उत्पादन, उपयोग वितरण-व्यवस्था में एक-सूत्रता है, जो न्याय सम्मत है। यही समाधान है। मानव में समाधान की प्यास है।

प्रत्येक व्यक्ति का उत्पादन उसकी क्षमता, अवसर, साधन एवं अनिवार्यता पर आधारित है।

“क्षमता व स्वसंस्कार” अध्ययन तथा वातावरण पर, “अवसर” व्यवस्था पर, “साधन” उपलब्धि पर, “अनिवार्यता” वर्तमान स्थिति पर आधारित है।

“संस्कार” (प्रवृत्ति) तात्रय पूर्वक “अध्ययन” निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य पूर्वक तथा “वातावरण” विशेषतः मानवकृत है। मानवकृत वातावरण ही व्यवस्था है। मानवीयता में शिक्षा संस्कार एवं व्यवस्था की एकसूत्रता, अमानवीयता में एकसूत्रता का अत्याभाव, अतिमानवीयता में मानव स्वतंत्रता पूर्वक एक सूत्रता सहज प्रमाण है, यही अभ्यास का तात्पर्य है। अर्थात् संस्कार सम्पन्न होना अभ्यास का फलन है।

जागृत मानव ही स्वतंत्रित है।

अजागृत अथवा भ्रमित मानव आसक्ति से मुक्त नहीं है, इसलिए विवेक का उत्कर्ष ही अनासक्ति सूत्र है।

विवेक का उत्कर्ष ही वस्तुगत एवं वस्तुस्थिति सत्य का प्रचोदन (यथार्थग्राही एवं प्रसारण योग्य क्षमता) है।

वस्तुस्थिति एवं वस्तुगत सत्य का अनुभव ही यथार्थता (अनासक्ति) है। वस्तुगत व वस्तुस्थिति सत्यता का अनुभव करने के लिए ज्ञानावस्था की इकाई पात्र है। इसकी चरितार्थता ही चारों आयामों की पूर्ण तृप्ति है।

प्रत्येक मानव स्वतंत्रता के प्रति आशुक, कल्पनाशील तथा इच्छुक है।

“न्याय, धर्म, सत्य पूर्ण विधि से स्वयं में, से, के, लिए तंत्रित एवं नियन्त्रित जीवन-प्रतिष्ठा ही स्वतंत्रता है।”

मानव में न्याय चरितार्थता की क्षमता ही स्वतंत्रता है, यही सामाजिकता का प्राण व त्राण है। अमानवीयतावश (पशु मानव एवं राक्षस मानव) स्वतंत्र एवं संयत नहीं है।

मानवीयतापूर्ण मानव संयमता में, से, के लिए स्वतंत्रता का प्रमाण है और ऐषणा त्रय सहित उपकार करता है।

देव मानव स्वतंत्रता का प्रमाण है एवं लोकेषणा सहित उपकार करता है।

अतिमानवीयतापूर्ण दिव्य मानव पूर्ण स्वतंत्र है तथा ऐषणा मुक्त विधि से उपकार करते हैं। स्वतंत्रता के प्रमाण में संवेदनशीलताएं संज्ञानशीलतापूर्वक नियन्त्रित रहना पाया जाता है।

आत्मा के संकेतानुरूप बुद्धि, बुद्धि के संकेतानुरूप चित्त, चित्त के संकेतानुरूप वृत्ति, वृत्ति के संकेतानुरूप मन है, जो क्रम से अनुभव, बोध, इच्छा, विचार एवं आशा है। यही स्वतंत्र जीवन का प्रत्यक्ष रूप है। इसके विपरीत में लोकानुरूप, आशानुरूप एवं कल्पनानुरूप इच्छाएं परतंत्रता का प्रत्यक्ष रूप हैं, जबकि परतंत्रता मानव सहज वांछित घटना एवं उपलब्धि नहीं है।

मध्यस्थ क्रिया पूर्ण जीवन ही स्वतंत्रता है।

**मध्यस्थ क्रिया का अस्तित्व है, इसलिए स्वतंत्रता की संभावना है।**

मानव उत्पादन में नियमपूर्वक, व्यवहार न्यायपूर्वक, विचार धर्म (समाधान) पूर्वक सहअस्तित्व में अनुभव पूर्वक मध्यस्थ पूर्ण

होना पाया जाता है।

मध्यस्थ पूर्णता की प्रेरणा मध्यस्थ क्रिया में ही है। यही सम व विषम का नियंत्रण है। साथ ही मध्यस्थ जीवन की संभावना है। इसके प्रमाण परम्परा में ही दिव्य मानव है।

नियम, न्याय, धर्म और सत्य ही ज्ञान है। मध्यस्थ क्रिया ही इनका उद्घाटन करती है। इसमें पूर्ण निष्णात होने तक ही जागृति क्रम है। यही अभ्यास है।

अमानवीयता में असामाजिकता, मानवीयता में सामाजिकता एवं अतिमानवीयता में स्वतंत्रता-स्वराज्य प्रमाणित होता है, जो प्रसिद्ध है।

सामाजिकता से सम्पन्न हुए बिना मानव का अतिमानवीयता को पाना संभव नहीं है, क्योंकि जागृति एक सघन व्यवस्था एवं क्रम है। विचार सीमा में ही मानव स्वतंत्रता का अनुभव करता है, क्योंकि जागृत मानव का मूल मूर्त रूप आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभूति और प्रमाण ही है।

मानवीयता का उत्कर्ष ही अतिमानवीयता के लिये प्रेरणा है, क्योंकि पदार्थावस्था के परस्पर उत्कर्ष से प्राणावस्था; पदार्थावस्था व प्राणावस्था के उत्कर्ष से जीवावस्था; पदार्थावस्था, प्राणावस्था व जीवावस्था के उत्कर्ष से भ्रमित ज्ञानावस्था; पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था व भ्रमित ज्ञानावस्था के उत्कर्ष से भ्रान्ताभ्रान्त ज्ञानावस्था; पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, भ्रमित ज्ञानावस्था एवं भ्रान्ताभ्रान्त ज्ञानावस्था के उत्कर्ष से निर्भ्रान्त देव मानवीयतापूर्ण अवस्था; पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, भ्रमित ज्ञानावस्था, भ्रान्ताभ्रान्त ज्ञानावस्था एवं निर्भ्रान्त देव मानवीयता के उत्कर्ष से निर्भ्रान्त दिव्य

मानवीयता पूर्ण अवस्था प्रसिद्ध है।

चैतन्य क्रिया ही जागृति पूर्वक जागृति एवं जागृतिपूर्ण संस्कृति और सभ्यता को प्रकट करता है। इसी के आधार पर विधि एवं व्यवस्था स्पष्ट होता है।

व्यक्तिगत रूप में जो संस्कार प्रवृत्तियों के रूप में हैं, वही परिवार में आचरण, समाज में आचरण एवं संस्कृति, राष्ट्र में संरक्षण सभ्यता एवं व्यवस्था और अन्तर्राष्ट्र में विधि एवं सार्वभौम व्यवस्था सहज प्रमाण प्रसिद्ध है।

नियम, न्याय, धर्म एवं सत्य अखंड हैं, क्योंकि इनकी मात्रा का निर्णय नहीं है। क्रमशः मानव अनुसरण, अनुशीलन, अनुगमनपूर्वक अनुभव के लिए प्रेरित है। यही अखंड सामाजिकता और सार्वभौम व्यवस्था का स्पष्ट सम्भावनात्मक तथ्य है।

चेतना विकास के लिए अवसर का भास, आभास या प्रतीति होना मानव में पाये जाने वाले कल्पनाशीलता की प्रक्रिया है, जो जागृति के प्यास की महिमा है। प्रमाणित होने के लिए अनुभव से अधिक उदय होना पाया जाता है।

प्रत्येक अनुसंधान के मूल में यथार्थता के प्रति अनुमान पाया जाता है, जो स्पष्ट है।

जागृत मानव द्वारा प्रकट होने वाला प्रमाण प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभव पूर्वक ही सिद्ध हुआ है, जो प्रत्यक्ष है।

प्रयोग सिद्ध प्रमाण उत्पादन व व्यवस्था में; व्यवहार सिद्ध प्रमाण समाज में एवं अनुभव सिद्ध प्रमाण आचरण में उपादेयी तथा प्रयोजन दायी सिद्ध हुआ है।

जीवन, प्रमाण सिद्ध करने के लिए ही है। वह उत्पादन, व्यवहार एवं अनुभूति ही है।

प्रमाण विहीन अथवा प्रमाण संभावना-विहीनता ही निराशा या कुण्ठा है, जो मानव जीवन के कार्यक्रम में सहायक नहीं हैं।

प्रमाण ही परिचय, समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व, जागृत जीवन, उपलब्धि, सफलता, अखण्ड समाज, विधि-व्यवस्था, सभ्यता, संस्कृति एवं संस्कार है।

प्रमाण सिद्ध एवं सम्पन्न होते तक मानव संतुष्ट नहीं है। प्रमाण सिद्धि पाँचों स्थितियों में मानवीयता तथा अतिमानवीयता में है। अमानवीयता में यह संभव नहीं है। “तात्रय” से अधिक मानव के लिए प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभव करने के लिए कुछ भी नहीं है।

मानव में संस्कार ही विचार एवं आचरण है, यही सम्यकता के लिए अपेक्षा है। संस्कार की सम्यकता के बिना सामाजिकता की अखण्डता, सार्वभौमिकता, तारतम्यता एवं एकसूत्रता संभव नहीं है। यह मानवीयता एवं अतिमानवीयता पूर्वक सफल एवं अमानवीयतावश असफल है।

वर्ग-भेद के निराकरण के लिए मानवीयता एवं मानवीय मूल्य ही मूलतः आधार हैं। इसके बिना वर्ग भेद, समुदाय भेद का अभाव नहीं है एवं युद्ध संभावना से भी मुक्ति नहीं है। युद्ध मानव का अभीष्ट या अभीष्ट साधन नहीं है। सम्पूर्ण वर्गीयता मानवीयता में विलय होती हैं।

मानव जाति एवं धर्म एक ही है, इस चिंतन का उदय तथा अधिक उत्पादन एवं उपयोग, सदुपयोगपूर्ण व्यवस्था पद्धति की सम्पन्नता ही मानवीयतापूर्ण जीवन में आश्वस्त होने का मुख्य आधार

है।

मानवीयता सम्पन्न मानवापेक्षा ही संस्कार एवं व्यवस्था-पद्धति का आधार एवं लक्ष्य है। यही धर्मनीति, अर्थनीति एवं राज्यनीति का लक्ष्य है। यही मानव जीवन की समग्र नीति है।

मानव आस्वादन तथा स्वागतपूर्वक ही सम्पूर्ण व्यवहार एवं उत्पादन करता है। तदर्थ ही विचार एवं अध्ययन है।

भौतिक-रासायनिक सीमा में आस्वादानापेक्षा तथा चैतन्य क्रिया में सामाजिक मूल्यापेक्षा प्रसिद्ध है। सामाजिक मूल्यों की स्पष्टता मानवीयता में पायी जाती है। यही संभावना है।

यांत्रिकता की सीमा में आस्वादन की आवश्यकता, संज्ञानशीलता संवेदनशीलता में सामाजिक मूल्यों की आवश्यकताएं तथा कल्पनाएं हैं। यही अनुभव के लिए संभावना बनी रहती है।

स्वयं के लिए जो घटनाएं वेदना के कारण हैं वे ही दूसरों के लिए भी हैं, ऐसी स्वीकृति क्षमता ही संवेदना है। इसके अभाव में मानव जीवन में निहित विशेष मूल्यों का प्रयोजन सिद्ध होना संभव नहीं है। इसी कारणवश मानव सामाजिक मूल्यों के आचरण, अनुसरण एवं अनुशीलन के लिए प्रेरित है।

संचेतना ही मानव की विशेषता है। यही विशेषता समाधान, समन्वयता, तारतम्यता, संतुलन एवं संगीतमयता को पाने का एकमात्र अधिकार है।

आदर, सम्मान, उदारता, स्नेह, विश्वास, गौरव एवं कृतज्ञता, संज्ञानशीलता का प्रत्यक्ष रूप है। इनके बिना सामाजिक व्यवहार-सम्पन्न होना संभव नहीं है।

यांत्रिक प्रक्रिया में आस्वादन, संचेतनशील क्रिया में स्वागत पद्धति स्थापित पायी जाती है।

अनुमान क्षमता ही प्रत्यक्ष रूप में स्वागत पद्धति, वास्तविकता एवं अनिवार्यता है।

मानव के अखण्ड सामाजिकता को पाने के लिए जड़-चैतन्य प्रकृति में निहित मूल्यों को पूर्णतया अध्ययन, अवगाहन, मनन चिन्तन एवं अनुभव पूर्वक व्यवहार एवं उत्पादन में लाने के लिए अनिवार्य है। इसका निर्वाह ही जीवन में सफलता, उपलब्धि, समृद्धि एवं समाधान है।

अनुभव केवल वस्तुस्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य एवं स्थितिपूर्ण सत्य ही है।

अनुभूति ही मानव का आद्यान्त लक्ष्य है। यही जागृति की अनिवार्यता को प्रसवित करता है। इसलिए व्यवस्था, प्रक्रिया, पद्धति, प्रणाली एवं नीति के अनुसंधान एवं अनुसरण के लिए संकल्प, इच्छा, विचार व आशा का प्रवर्तन है, फलतः उत्पादन, व्यवहार तथा अनुभूति की चरितार्थता है।

मध्यस्थ क्रिया की महिमा ही अनुभव एवं अनुभव में निष्ठा में, से, के लिए प्रयास है। यही जागृति क्रम-श्रृंखला तथा स्थितिवत्ता का द्योतक है।

मध्यस्थ क्रिया (आत्मा) में ही अनुभव में प्रवृत्त रहने, अनुभव से प्रभावित होने और प्रभावित करने तथा अनुभव के लिए जागृतिशील रहने की संभावना एवं अवसर है, क्योंकि अनुभव आत्मा में ही होता है, अनुभव मध्यस्थता है। यह उत्पादन में नियम, व्यवहार में न्याय, विचार में समाधान एवं अनुभव में सत्य है साथ ही मानव जीवन में,

से, के लिए प्रमाण भी है। सम और विषम क्रियाएं मध्यस्थ क्रिया से अनुशासित हैं ही, साथ ही अनुसरण, अनुकरण व अनुगमन के लिए भी बाध्य हैं।

प्रकृति का मध्यस्थ सत्ता में संपृक्त अधिकार ही क्रिया, विकास एवं जागृति के लिए कारण है। जागृति पूर्वक पाया जाने वाला चरमोत्कर्ष अधिकारी ही अनुभव है। यही मध्यस्थ क्रिया की आरुढ़ता है, ऐसी अर्हता-पर्यन्त जागृतिशीलता है।

न्याय की याचना व कामना को आचरण में स्वीकारने एवं उसमें निष्ठा प्रकट करने की क्षमता ही सम्यक संस्कार है। यही वर्ग-बंधन से मुक्ति है। साथ ही, अखंड सामाजिकता का प्रधान लक्षण भी है।

सम्पूर्ण आस्वादन जड़ शरीर के लिए पोषक या शोषक सिद्ध हुए हैं। सम्पूर्ण स्वागत क्रियाएं चैतन्य सीमान्तवर्ती उपादेयी हैं, जो संस्कार है। यही शिक्षा, अध्ययन, अनुसंधान व अनुभूति है जिसके बिना मानव जीवन की सफलता सिद्ध नहीं होती है।

“जाने हुए को मानना और माने हुए को जानना ही अभ्यास है।” अभ्यास का प्रत्यक्ष रूप निपुणता, कुशलता तथा पांडित्य की चरितार्थता है यही उसकी प्रतिष्ठा एवं आप्त कामना भी है।

मानवीयतापूर्ण आचरण में प्रतिष्ठित निष्ठा ही सम्यक आचरण एवं व्यवहार है। यही समाधान और समृद्धि भी है।

अतिमानवीयता के प्रति निर्भ्रमता ही सम्यक ज्ञान है। यह सम्यक आचरण, व्यवहार एवं ज्ञान का प्रसारण ही आप्त पुरुषों की आप्त कामना है। यही शास्त्र सार है।

सर्वतोमुखी विकास ही अभ्युदय है जो सर्व मानव का लक्ष्य है क्योंकि -

“प्रत्येक भ्रमित मानव कर्म करते समय स्वतंत्र एवं फल भोगते समय परतंत्र है।”

“प्रत्येक मानव गलती करने का अधिकार एवं सही करने का अवसर लेकर जन्मता है।”

“प्रत्येक मानव जन्म से न्याय का याचक है, न्याय प्रदान करने में असमर्थ रहता है।”

“प्रत्येक मानव बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि चाहता है।”

“प्रत्येक मानव का अकेले में कोई कार्यक्रम स्पष्ट नहीं है।”

“प्रत्येक मानव प्रकृति का अभिन्न अंग है।”

“प्रत्येक मानव सुख, शांति, संतोष एवं आनंद अनुभूति चाहता है।”

“प्रत्येक मानव का लक्ष्य विहीन कार्यक्रम नहीं है।”

“प्रत्येक मानव सतर्कता एवं सजगता से परिपूर्ण होना चाहता है।”

चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों की एकसूत्रता एवं समन्वयता ही अभ्युदय का प्रत्यक्ष रूप है, जिसकी संभावना एवं अवसर भी है।

चार आयाम : विचार, व्यवहार, व्यवसाय, अनुभव

पाँच स्थितियाँ : व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्र

आवश्यकता से अधिक उत्पादन पूर्वक भौतिक समृद्धि है, जो उत्पादन का लक्ष्य है।

न्यायपूर्ण व्यवहार (मानवीय मूल्यों का निर्वाह) पूर्वक सहकार्य सहयोग एवं सहानुभूति है। जिसका प्रत्यक्ष रूप समाज में अभय है।

जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का दर्शन एवं व्यापक सत्ता में अनुभव ज्ञानपूर्वक समाधान है, जिसका प्रत्यक्ष रूप व्यवहारात्मक जनवाद एवं समाधानात्मक भौतिकवाद है।

सत्ता में अनुभव ही पूर्ण विकास और जागृति है, जिसका प्रत्यक्ष रूप दया, कृपा एवं करुणा का प्रकटन है। यही चारों आयामों की एकसूत्रता, पूर्ण उपलब्धि, विकास एवं जागृति सफलता कृतकृत्यता, सतर्कता एवं सजगता है, साथ ही चैतन्य प्रकृति का अभीष्ट भी।

सह-अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए जागृति ही एक मात्र प्रेरणा स्रोत है। सम्पूर्ण प्रयास व्यवहारात्मक जनवाद, समाधानात्मक भौतिकवाद तथा अनुभवात्मक अध्यात्मवाद के परिप्रेक्ष्य अथवा आवश्यकता से है।

आशा व प्रत्याशा में समाधान रूप में शुभ होना पाया जाता है, उसके अनुरूप कर्म और उपयोग में दक्षता व पात्रता का अभाव ही पराभव या असफलता का कारण है। यही पुनःप्रयासोदय है। यह क्रम तब तक रहेगा जब तक स्वस्थ व्यवस्था एवं शिक्षा से मानव सम्पन्न न हो जाए। अतः मानव द्वारा “वादत्रय” को सफल बनाने के लिए स्पष्ट एवं पूर्णतया मानव की परिभाषा, मानवीयता की व्याख्या, सामाजिक अनिवार्यता, समाज की परिभाषा, समाज का आधार, समाज का लक्ष्य, समाज का आचरण, सामाजिकता का अध्ययन,

समाज की अक्षुण्णता के लिए प्राकृतिक एवं वैयक्तिक ऐश्वर्य के सदुपयोग एवं सुरक्षा का अध्ययनपूर्वक व्यवहारान्वयन आवश्यक है।

विकसित इकाई के द्वारा अविकसित के पूर्ण विकास के लिए की गयी प्रेरणा सहित सहायता ही आप्त कामना है।

स्वयं की जागृतिशीलता में विश्वास व निष्ठा रहते हुए अविकसित के विकास के लिए सहानुभूति की निरंतरता ही शुभेच्छा है। स्वयं समृद्ध एवं समाधान पूर्वक कम विकसित के समाधान व समृद्धि के लिए किया गया सहकार्य ही मंगल कामना है।

विकास एवं जागृति ही संपूर्ण प्रकृति का अभीष्ट है। इसका प्रत्यक्ष रूप प्रकृति की विधा एवं उसकी तात्विक स्थितिवत्ता है जो “गठनपूर्णता”, “क्रियापूर्णता” एवं “आचरण-पूर्णता” है। इसी श्रृंखला में मानव तथा मानवीयता वस्तुगत, वस्तुस्थिति-सत्य के रूप में प्रत्यक्ष हैं।

मानव की परिभाषा एवं मानवीयता की व्याख्या से यह स्पष्ट हो चुका है कि मानवीयता में ही सामाजिकता की संभावना स्पष्ट रहती है साथ ही, मानवीयता से परिपूर्ण होने के अनंतर अतिमानवीयता अधिकार संभव है।

जीवन मूल्य सुख, शान्ति, सन्तोष, आनन्द है जिसके लिए मानव बौद्धिक समाधान, भौतिक समृद्धि, अभय व सह-अस्तित्व में प्रमाणित होना चाहता है। इसीलिए कार्यक्रम है।

मानव के आद्यान्त कार्यक्रम की उपलब्धि केवल भौतिक समृद्धि और बौद्धिक समाधान है। इसका अनुभव ही सुख व शांति है। ऐसी अनुभव-क्षमता की निरंतरता में मानव सुख, शान्ति, संतोष, आनन्द एवं परमानन्द को अनुभव करता है।

**मानव जाति के समस्त कार्यक्रम का उद्देश्य अनुभव एवं प्रमाण ही है।** बौद्धिक समाधान के बिना अनुभव संभव नहीं है, क्योंकि समाधान की निरंतरता ही अनुभव है। भौतिक समृद्धि के बिना बौद्धिक समाधान सिद्ध नहीं है और बौद्धिक समाधान के बिना भौतिक समृद्धि प्रमाणित नहीं होती क्योंकि अज्ञात को ज्ञात करने के लिए एवं अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए अनवरत प्रयास हुआ है।

**विवेक व विज्ञान का संतुलनाधिकार सहज प्रमाण ही बौद्धिक समृद्धि एवं भौतिक समाधान है।**

**कर्माभ्यास के बिना उत्पादन एवं समृद्धि तथा व्यवहाराभ्यास के बिना समाधान नहीं है।**

**कर्माभ्यास अन्वेषण, शिक्षण, प्रशिक्षण है, जिसकी चरितार्थता उत्पादन है, फलतः समृद्धि है।**

व्यवहाराभ्यास अनुसंधान, अनुसरण, आचरण, संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था है, जिसकी चरितार्थता सामाजिकता, अखंडता, अभयता, समाधान, संतुलन एवं स्वर्ग है।

मानव का अशेष कार्यक्रम वैचारिक, व्यवहारिक एवं उत्पादन है, वैचारिक परिपूर्णता अथवा समाधान के लिए चिन्तनाभ्यास आवश्यक है ही। चिन्तनाभ्यास पूर्वक ही यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता को निरीक्षण-परीक्षण कर प्रमाणित कर पाना सहज है। यही समाधान रूपी निष्कर्षों को स्फुरित करता रहता है। जिससे ही सर्वशुभ है। जो पाँचों स्थितियों में “नीतित्रय” से संबद्ध है।

“अनुभव कार्यक्रम नहीं है। अपितु अनुभव में, से, के लिए ही कार्यक्रम है।” नीतित्रय अन्योन्याश्रित है, इसलिए -

अर्थ के बिना धर्मनीति एवं राज्यनीति, सदुपयोग तथा सुरक्षा के बिना अर्थ की चरितार्थता सिद्ध नहीं है।

मानव अर्थ-विहीन नहीं है। प्रत्येक मानव में जन्म से तन-मन की अवस्थिति दृष्टव्य है। तन व मन के योगफल में ही धन का उत्पादन निर्माण, उपयोग, सदुपयोग एवं वितरण प्रत्यक्ष है।

मानव ही अर्थ के सदुपयोग व सुरक्षा की अनिवार्यता को सिद्ध करता है, जो मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। यही “नीतित्रय” की अनन्यता है, समस्त मानव की एकता के लिए आधार भी है। यह आधार अपरिवर्तनीय एवं शाश्वत है। साथ ही परस्परता में अनन्यता को पाने का स्रोत भी है। यही समाधान-चक्र है। इसी समाधान के लिए अनादि काल से मानव तृषित एवं प्रत्याशी है।



## अखण्ड समाज गति सहज अनिवार्यता

मानव ही उत्पादन में अर्थ की सुरक्षा एवं सदुपयोग का; व्यवहार आयाम में न्याय एवं सह-अस्तित्व का; विचार आयाम में समाधान व दर्शन क्षमता का; अनुभव आयाम में परमानन्द एवं सहअस्तित्व का उद्गाता है।

जागृत मानव दश सोपानीय व्यवस्था त्रिधाकार्य-क्षेत्र (बौद्धिक, भौतिक, आध्यात्मिक) के योग से “नीति-त्रय” के आधार पर “वादत्रय” का विश्लेषणपूर्वक “तात्रय” की व्याख्या सहित मानवीयता पूर्वक मानव पाँचों स्थितियों में आचरण-संहिता को स्पष्ट करता है, जिसका प्रत्यक्ष रूप अखंड सामाजिकता है। फलतः न्याय का अनुभव है, जो सुख है, यही लोक व्यापीकरण पूर्वक अभय है, जिसकी चिरकाँक्षा मानव में है।

### समाज का आधार

- मानव सहज मानवीयता पूर्ण आचरण
- प्रमाणत्रय
- स्थापित संबंधों में निहित स्थापित मूल्य
- नीतित्रय

मानवीयता पूर्वक ही सामाजिकता प्रमाणित होती है। अमानवीयता में सामाजिकता की संभावना नहीं है। अतिमानवीयता

में मानवीयता समर्पित रहती ही है। अतः सामाजिकता की संपूर्ण अभिव्यक्ति मानवीयता और अतिमानवीयता ही है क्योंकि सामाजिकता और किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती है। नियतिक्रम सहज विकासक्रम, विकास एवं जागृतिक्रम, जागृति पूर्वक ही मानव मानवीयता का अनुसरण व आचरण करने के लिए पात्र है।

समाज का मूल रूप प्रत्येक मानव में समाया है, जो विचार, आशा, आकाँक्षा एवं मंगल कामना के रूप में है।

स्थितिवत्ता की मूल्य-दर्शन-क्रिया ही अध्ययन है। यथार्थ मूल्य-दर्शन-क्षमता ज्ञान अनुभव ही है।

मूल्य दर्शन क्षमता ही प्रमाणवत्ता को प्रगट करती है प्रमाण केवल प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभव ही है।

संबंध विहीन जन्म एवं मूल्य विहीन संबंध नहीं है। सम्पूर्ण मानव के साथ स्थापित संबंध समान हैं। उनमें स्थापित मूल्य भी समान है। यही संबंध व मूल्य ध्रुव है। इसका निर्वाह ही न्याय है। यही न्याय-ध्रुव है। मानव में न्याय की याचना, कामना एवं सम्मति जन्म से ही है। यही शाश्वत मूल्य समाज का मूल आधार है। इसी आधार पर “नीतित्रय” सुदृढ़ है।

धर्म (सुख अनुभव) सफलता ही जीवन की सफलता है। धर्माकाँक्षा विहीन मानव नहीं है। इसीलिए धर्म नीति सदुपयोग प्रधान एवं राज्यनीति सुरक्षा प्रधान, व्यवहार एवं आचरण प्रक्रिया है। इसी सत्यतावश “नीतित्रय” भी समाज के मूल में समाहित है।

जागृत मानव में अनुभवमूलक बोध चिन्तन से स्थितिवत्ता का दर्शन, मूल्य-दर्शन है, इसी से संतुलन और सार्वभौमता व अखण्डता प्रमाणित होना पाया जाता है। साथ ही निर्धारण एवं निश्चय पूर्वक

अनुसरण व अनुमोदन क्रिया को सम्पन्न करती है।

विचार-विहीन मानव नहीं है। विचार के अभाव में प्रमाण सिद्ध नहीं है। मानव का मूल रूप विचार है।

### समाज का लक्ष्य

1. अभयता,
2. भौतिक समृद्धि,
3. बौद्धिक समाधान, जिनका प्रत्यक्ष रूप अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था है।

मानव के अभ्युदय का प्रत्यक्ष रूप अखंड सामाजिकता ही है। यही अभय है।

कृषि, पशु-पालन तथा प्रौद्योगिकी से ही भौतिक समृद्धि प्रसिद्ध है। इसके लिए पर्याप्त निपुणता, कुशलता एवं पांडित्याधिकार अनिवार्य है, जो सामान्य और महत्वाकांक्षा की सीमा में चरितार्थ होता है।

बौद्धिक समाधान अनुभवमूलक विधि से मानवीयता में प्रत्यक्ष है।

लक्ष्य जब आकांक्षा व आशावश आवश्यकता या अनिवार्यता के रूप में परिवर्तित (तीव्र इच्छा) होगा, तब यही कार्यक्रम के लिए बाध्यता होगी, क्योंकि लक्ष्य विहीन कार्यक्रम नहीं है।

जागृत मानव लक्ष्य सहित कार्यक्रम को पहचानने, प्रमाणित करने में मानव समर्थ है।

अखण्ड समाज की औचित्यता मानवीयतापूर्ण पद्धति से सिद्ध

होता है, जो स्पष्ट दर्शन-क्षमता पर आधारित है।

मानव के चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों की एकसूत्रता ही अभयता, समाधान एवं समृद्धि है।

दर्शन क्षमता प्रत्येक मानव में किसी न किसी अंश में पायी जाती है। दर्शन क्षमता के जागृति की अभिलाषा से शिक्षा एवं अध्ययन की अनिवार्यता सिद्ध हुई है।

संपूर्ण अध्ययन सत्ता में संपृक्त प्रकृति सहज है। जो अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ही है। अनुभव ही सत्य है और सत्य अपरिणामी है। अनुभवपूर्वक व्यवहार एवं उत्पादन ही प्रमाण है। दर्शनविहीन प्रयोग व उत्पादन सिद्ध नहीं है।

विश्लेषित स्वीकृत होना ही अध्ययन है। रूप, गुण, स्वभाव और धर्म की प्रत्यक्षानुभूति ही विश्लेषण है, जो स्थितिवत्ता व सत्य है। अस्तु, अध्ययन का फलन ही अनुभव है। अनुभव विहीन प्रत्येक उत्पादन-कार्य में त्रुटि एवं व्यवहार-कार्य में अपराध भावी है।

त्रुटि एवं अपराध मानव की वांछित प्रस्तुति नहीं है। यह प्रस्तुति तब तक रहेगी जब तक अध्ययन पूर्ण न हो जाय, प्रत्येक मानव में अध्ययन प्रवृत्ति जन्म से ही पाई जाती है।

न्यायपूर्ण व्यवहार चेतना विकास मूल्य शिक्षा मानवीयता पूर्ण समाज के लिए आवश्यक कार्यक्रम है। गुणात्मक स्थितिवत्ता की उपेक्षा ही अज्ञान, अभाव, असमर्थता एवं अक्षमता है। अज्ञानी को ज्ञानी में, अभाव को भाव में, असमर्थ को समर्थ में, अक्षम को सक्षम में परिवर्तित, परिमार्जित करने के लिए शिक्षा एवं व्यवस्था है।

मानव पाँच स्थितियों में गण्य है - 1. व्यक्ति 2. परिवार  
3. समाज 4. राष्ट्र 5. अंतर्राष्ट्र।

इन पाँचों स्थितियों का आचरण परस्पर पूरक है। यह दश सोपानीय व्यवस्था में स्पष्ट है।

आशा एवं आकाँक्षापूर्वक किया गया क्रियाकलाप ही आचरण है। आशयपूर्वक स्वादन-क्रिया ही आशा है। जिस स्वादन के बिना सह-अस्तित्व में दृढ़ता व सुरक्षा नहीं है, उसकी अपेक्षा ही स्वादन क्रिया का आशय है। मूल्य रुचि ग्राही क्रिया ही स्वादन है। मानव में संचेतना और गति का संयुक्त रूप ही क्रिया है। ऐसी क्रियाओं का समूह ही क्रियाकलाप है। मन में आस्वादन एवं चयन क्रिया प्रसिद्ध है। स्वागत क्रिया ही आकाँक्षा है। यही संचेतना एवं स्थितिवत्ताग्राही क्रिया में संचेतनशीलता का लक्षण है।

संचेतनशीलता ही स्वागत क्रिया का आधार है। जो जितना ही संचेतनशील होता है, उतना ही अन्य की वेदना, संवेदना, संज्ञानीयता एवं स्थितिवत्ता के संकेत को ग्रहण करता है। फलतः निराकरण के लिए प्रयास करता है। यही प्रयासोन्मुखता का आधार है।

मानव ही इस पृथ्वी पर अधिकाधिक संचेतनशील है। परस्पर मानव की संचेतनशीलता में जो अंतरान्तर है, उसी में अनन्यता को स्थापित करने के लिए प्रयास भी किया है। यही शिक्षा और अध्यापन कार्य की प्रेरणा भी है।

जागृतिशीलता का प्रत्यक्ष रूप ही संचेतनशीलता है, जिसका चरमोत्कर्ष ही अनुभव-क्षमता है।

वेदना भ्रमवश होती है, संवेदना इन्द्रिय सन्निकर्ष के साथ होने

वाली भंगुरता के आधार पर संज्ञानशीलता के लिए जिज्ञासा का स्रोत है। संवेदनशीलता के आधार पर ही संज्ञानशीलता की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। वेदना ही संवेदना एवं संवेदना ही संवेगों का मूल तत्व है। संचेतनामूलक पाँच मूल प्रवृत्ति हर्ष कारक, वेदनामूलक पाँच प्रवृत्तियाँ क्लेश परिपाकात्मक हैं। हर्ष ही मानव की वांछित उपलब्धि है, क्लेश नहीं।

आचरण विहीन इकाई नहीं है। अस्तु, मानवीयतापूर्ण आचरण व्यक्ति में; सहयोग-सहकार्य योग्य क्षमता परिवार में; प्रोत्साहन योग्य प्रचार, प्रदर्शन एवं प्रकाशन समाज में; उसका संरक्षण एवं संवर्धन योग्य विधि एवं व्यवस्था राष्ट्र में; उसके अनुकूल परिस्थितियाँ अन्तर्राष्ट्र में प्राप्त कर लेना ही पाँचों स्थितियों की एकसूत्रता सूत्र है।

प्रत्येक मानव के लिए स्थापित संबंध समान हैं। संबंधों में निहित मूल्य नित्य हैं। किसी का सान्निध्य दूर होने मात्र से, उस संबंध में निहित मूल्य का परिवर्तन नहीं है, इसी प्रकार वियोग में भी है। वियोग शरीर का है न कि मूल्यों का, जो प्रत्यक्ष है। जैसे माता-पिता से वियोग। जीवन कालीन वियोग में भी पिता के प्रति जो मूल्य है, उसका परिवर्तन नहीं होता है।

प्रत्येक परस्परता में दायित्व समाया हुआ है। यही स्थापित मूल्यों में वस्तु व सेवा को अर्पित करता है। सभी अर्पण, मूल्यों के प्रति समर्पण है। यही अर्पण प्रक्रिया ही कर्तव्य है। व्यवहारपूर्वक यह प्रमाणित होता है कि ऐसा कोई संबंध नहीं है, जिसमें मूल्य न हो और जिसके प्रति दायित्व व कर्तव्य न हो।

**संबंध का पहचान मूल्यों का निर्वाह ही परिवार, समाज एवं व्यवस्था है। जन्म, जीवन, व्यवहार विशिष्ट,**

**शिष्ट, नीति एवं उत्पादन विनिमय वैभव से संबंध प्रसिद्ध हैं।**

1. जन्म संबंध = माता-पिता एवं भाई-बहन, पति-पत्नि, पुत्र-पुत्री
2. जीवन-जीवन संबंध = गुरु-शिष्य, जागृत सभी संबंध
3. शिष्ट-शिष्ट संबंध = मित्र, साथी-सहयोगी
4. नीति-नीति संबंध = विधि, व्यवस्था, संस्कृति एवं सभ्यता
5. उत्पादन-उत्पादन संबंध = क्षमता, अवसर, साधन एवं वितरण संबंधों में निहित मूल्यवत्ता-वश ही उसकी अक्षुण्णता पाई जाती है। यही अखंड समाज अक्षुण्णता भी है।

मूल्यों की स्थिरता ही अखंडता एवं अक्षुण्णता है, जो नियति क्रम में पाये जाने वाले तथ्य हैं। समाज की पाँचों स्थितियाँ परस्पर पूरक हैं, जिसकी एकसूत्रता ही अखंडता है। अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में “नीतित्रय” का संतुलन; राष्ट्रीय जीवन में मानवीयता के संरक्षण एवं संवर्धन योग्य विधि-व्यवस्था एवं शिक्षा-प्रणाली-पद्धति; सामाजिक जीवन में मानवीयता का प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन एवं प्रोत्साहन; परिवार-जीवन में मानवीयता के प्रति समर्पण, विश्वास एवं निष्ठा; व्यक्ति के जीवन में मानवीयता पूर्ण आचरण, व्यवहार, अभ्यास, अनुभव, विचार, तथा आवश्यकता से अधिक उत्पादन ही लोक मंगल-कार्यक्रम है। यही चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों की एकसूत्रता सूत्र है।

प्रत्येक मानव में सीमित शक्ति, निश्चित दायित्व-कर्तव्य एवं स्थापित संबंध पाये जाते हैं, जिनकी एकसूत्रता “नियम त्रय” एवं मानवीयता पूर्ण पद्धति से प्रमाणित होती है। यही गुणात्मक परिवर्तन

का औचित्य और मानव आचार संहिता है।

मानव की मूल शक्ति निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य है, यही मूल पूंजी है। यही मानव का मूल मूर्त रूप भी है, जो क्षमता, उत्पादन और व्यवहार के रूप में प्रकट होता है। यही प्रकटन व्यवहारात्मक जनवाद एवं समाधानात्मक भौतिकवाद को स्पष्ट एवं चरितार्थ करता है।

प्रत्येक व्यक्ति, परिवार व वर्ग स्वत्व और स्वतंत्रता चाहता है।

स्वाधीनता सहित ही स्वत्व है। स्वविचार, इच्छा, संकल्प, आशानुरूप चालन, संचालन एवं नियोजन क्रिया ही स्वाधीनता है, जो प्रत्यक्ष है। यही सार्वभौमता विधि से सफल है।

मानव-जीवन असंग्रह (समृद्धि), स्नेह, विद्या, सरलता एवं अभयात्मक मूल प्रवृत्तियों पर ही हर्ष का अनुभव करता है। संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान एवं भयात्मक प्रवृत्तियों पर आधारित संपूर्ण व्यवहार, उत्पादन एवं आचरण स्वयं में, से, के लिए क्लेश सहित है।

“जो जिसके पास है, उसी का वह बंटन करता है।”

विद्या का प्रत्यक्ष रूप निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य; असंग्रह का प्रत्यक्ष रूप आवश्यकता से अधिक उत्पादन; सरलता का प्रत्यक्ष रूप सामाजिकता; स्नेह का प्रत्यक्ष रूप सौजन्यता एवं अभय का प्रत्यक्ष रूप ही सह-अस्तित्व है। अस्तु, असंग्रह व सभ्यता के योग से धीरता का, विद्या व अभय के योग से वीरता का एवं स्नेह व सरलता के योग से उदारता का प्रसव है।

उपरोक्त तथ्य ही मानव को स्पष्ट व सिद्ध करता है कि मानव

की क्षमता, योग्यता, पात्रता ही उसका स्वत्व है जो निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य ही है। संपूर्ण उत्पादन इसी से होता है। संपूर्ण उत्पादन सामान्य एवं महत्वाकांक्षा में उपयोगी है, यही आवश्यकता है।

मानवीयता से परिपूर्ण होना ही स्वतंत्रता का प्रधान लक्षण है। स्वयं से तंत्रित होना न्याय, समाधान प्रमाणित होना ही स्वतंत्रता है। यही जीवन-चरितार्थता का लक्षण है।

मानव के स्वत्व में क्षमता, योग्यता एवं पात्रता है। उनके स्वाधीन (स्वबौद्धिकता के अधीन) में जिन वस्तु, स्थान व जीवों को पाया जाता है, उनकी अनिवार्यता मानव की उपयोग क्षमता में, से, के लिए ही है। क्षमता ही वहन, योग्यता ही प्रकटन एवं पात्रता ही ग्रहण क्रियाएं हैं, जो प्रत्येक मानव में प्रत्यक्ष हैं। साथ ही यही मानव का स्पष्ट रूप एवं अधिकार भी हैं। क्षमता, योग्यता एवं पात्रता ही मानवों का इकाईत्व, सीमा, संवेग, प्रवृत्ति, प्रतिभा, व्यक्तित्व, वहन, निर्वाह, निरूपण, निर्धारण, निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण एवं संयोजन है। यही उत्पादन, व्यवहार एवं अनुभव प्रमाण है।

वहनपूर्वक स्थापित मूल्यों का निर्वाह, शिष्टतापूर्वक शिष्ट मूल्यों का आचरण एवं व्यवहार, आचरण सहित भौतिक मूल्यों (उत्पादन मूल्यों) का समर्पण-अर्पण-उपयोगी सिद्ध हुआ है। यही स्वतंत्रता का मूल रूप है।

स्वत्व निर्वाह से, स्वतंत्रता प्रयोजन से, अधिकार उपलब्धि से प्रमाणित है।

मानव का अधिकार भौतिकता (उत्पादन व व्यवस्था) में, अधिकार एवं स्वतंत्रता बौद्धिकता (आचरण एवं स्वतंत्रता) में, अधिकार स्वतंत्रता एवं स्वत्व अध्यात्म (अनुभव) में चरितार्थ हुआ

है। यही व्यवहारात्मक जनवाद, समाधानात्मक भौतिकवाद, अनुभवात्मक अध्यात्मवाद है, जो धर्म नीति एवं राज्य-नीति को स्पष्ट करता है।

जो स्वयं के अधीन में हो जिससे स्व-विचार, इच्छा, संकल्प एवं आशानुरूप नियोजनपूर्वक प्रमाण सिद्ध हो, यही स्वत्व का प्रत्यक्ष रूप है। मानव में पाये जाने वाले मूल तत्व ही निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य है, जिनका वियोग संभव नहीं है। इसलिए यह मानव का स्वत्व सिद्ध हुआ है।

मानव, मानव के साथ व्यवहार, मानवेत्तर प्रकृति के साथ उत्पादन, अधिक विकसित के साथ गौरव व कृतज्ञ होने एवं सत्ता में अनुभव के लिए प्रवृत्त है।

सत्ता में अनुभव करने के लिए अवसर सबके पास समान है, किन्तु पात्रता व अर्हता में प्रभेद है।

जागृत मानव अजागृत की जागृति में सहायक, सहयोगी दिशा-निर्देशक एवं शिक्षक के रूप में प्राप्त है, जो माता-पिता, शिक्षक एवं उपदेशक के संबंधों में प्रत्यक्ष है, जो अनिवार्य है।

स्थापित संबंधों में निहित स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही प्रत्यक्ष व्यवहार है, जो सामाजिकता के लिए अनिवार्यतम तथ्य है। इसके निर्वाहनार्थ उत्पादन आवश्यक है इसका क्षेत्र प्रसिद्ध है।

जागृत मानव का व्यवहार ही व्यवस्था, संस्कृति, सभ्यता व विधि को प्रकट करता है, जिसके लिए वह उत्सुक है। चूंकि व्यवहार विहीन मानव नहीं है, अतः व्यवहार के बिना मानव-जीवन का कार्यक्रम सिद्ध नहीं होता है।

संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था का आधार मानवीयता है, क्योंकि मानवीयता से ही सामाजिकता स्थापित सिद्ध है। अमानवीयता में सामाजिकता की संभावना नहीं है, जबकि अतिमानवीयता में सामाजिकता समायी हुई है, इसलिए मानवीयता का आधार स्थापित संबंधों में निहित स्थापित स्थायी मूल्य ही है।

स्थापित मूल्यों में, से, के लिए ही स्वस्थ व्यवस्था है। चूंकि स्थापित मूल्यों की अनिवार्यता सर्वदा सबके लिए समान है, इसलिए स्थापित मूल्य ही विधि है। स्थापित मूल्यों का निर्वाह आचरण पूर्वक है, जो स्वयं में संस्कृति व सभ्यता है। यह सब मानवीयता सहज प्रमाण परंपरा में सिद्ध होता है।

वस्तु मूल्यों का नियंत्रण व्यवस्था पर है। उत्पादन सिद्ध वस्तुएं आवश्यकता के आधार पर दृष्टव्य हैं, इसलिए उनका मूल्य निर्धारण उन पर स्थापित की गई उपयोगिता एवं सुन्दरता के आधार पर श्रम मूल्य ही है।

आवश्यकताएं सामयिक हैं। प्रत्येक समय में प्रत्येक मानव को प्रत्येक वस्तु की आवश्यकता समान रूप से सिद्ध नहीं होती, जबकि स्थापित संबंधों की अनिवार्यता निरंतर है, जो प्रसिद्ध है। इसलिए आवश्यकताएं सामान्य एवं महत्वाकांक्षा की सीमा में ही हैं। इन सब का उपयोग सामयिक समाज गति के अर्थ में है। इसलिए संबंधों के निर्वाह में ही वस्तुओं के उपयोग, सदुपयोग व वितरण प्रयोजन की सीमाएं समाहित हैं।

### संबंध, मूल्य, मूल्यांकन

स्थापित संबंधों में निहित स्थापित मूल्यों का परिवर्तन किसी भी देश, काल व स्थिति में नहीं है। यही स्थायित्व का लक्षण और

अनिवार्यता का मूल कारण है। स्थापित मूल्य नौ हैं :-

1. कृतज्ञता, 2. गौरव, 3. श्रद्धा, 4. प्रेम, 5. विश्वास, 6. वात्सल्य, 7. ममता, 8. सम्मान, 9. स्नेह।

सामाजिक मूल्य मानवीयता सहज मानव आचरण के आधार है। इनमें से विश्वास “साम्य” मूल्य है और “प्रेम” पूर्ण मूल्य है। व्यवहार निर्वाह काल में उक्त स्थापित मूल्यों के साथ आचरण-प्रक्रिया (शिष्टता) रहती है, जो क्रमशः सौम्यता, सरलता, पूज्यता, अनन्यता, सौजन्यता, सहजता, उदारता, सौहार्द्रता तथा निष्ठा है। यही शिष्टता है, जो स्थापित मूल्य में समर्पित रहती है, जो प्रसिद्ध है।

भौतिक समृद्धि के लिए ही मानव उत्पादन करता है, जिसकी उपयोगिता महत्वाकांक्षा व सामान्य आकांक्षा में निहित है। यह भी जीवन का अविभाज्य आयाम है। यह स्पष्ट है कि उत्पादन ही मानव जीवन का सर्वस्व नहीं है। यही कारण है कि मानव सामाजिक, आर्थिक, राज्यनीति को पालन करने के लिए बाध्य है।

व्यवहारात्मक जनवाद का आधार केवल “न्याय” ही है, क्योंकि प्रत्येक मानव जन्म से ही न्याय का याचक है। यही “नीतित्रय” की समन्वयता की एकसूत्रता का भी कारण है साथ ही जनवादी चिंतन, निरीक्षण व स्पष्टीकरण का आधार भी है। व्यवहार का आधार न्याय ही है।

मानव की परस्परता में आश्वस्त एवं विश्वस्त होने का आधार न्याय ही है।

अखण्ड समाज परम्परा में स्थापित मूल्य का निर्वाह ही शिष्टता की अभिव्यक्ति तथा “अर्थ” का सदुपयोग है। वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय जीवन में एकसूत्रता ही

“न्याय” है। यही सार्वभौम कामना है, जो व्यक्ति के आचरण एवं व्यवहार में, परिवार के सहयोग एवं सहकार्य में, समाज के प्रोत्साहन एवं प्रेरणा में, राष्ट्र के संरक्षण तथा संवर्धन में एवं अंतर्राष्ट्रीयता के अनुकूल परिस्थिति एवं एकसूत्रता में चरितार्थ होती है। यही सर्व-मानव की कामना, मांगल्य, शुभ, संगीत, वांछनीय अनिवार्यता, ऐतिहासिक उपलब्धि, नियतिक्रम स्थिति, अखंडता, अभयता, सतर्कता एवं स्वर्ग है।

अखण्ड समाज परम्परा में स्थापित मूल्यों के निर्वाह में ही शिष्टताएं समर्पित हैं। “अर्थ” का सदुपयोग मानवीयता में चरितार्थ होता है, जो जागृति में पायी जाने वाली सुखद स्थिति है।

शिष्टता में वैविध्यता की संभावना देश-कालवश है। “अर्थ” के सदुपयोग में तथा स्थापित मूल्यों में विकल्प नहीं है। यही अखंडता एवं अक्षुण्णता का मूल तथ्य है। इससे ही अनुप्राणित जीवन नित्य-कार्यक्रम, उत्सव, समृद्धि, समाधान, उत्साह, सफलता, स्थिरता, शान्त, संतोष एवं सुख का अनुभव करता है। यही कामना मानव में अनन्त काल से है।

3

## जनाकाँक्षा को सफल बनाने योग्य शिक्षा व व्यवस्था

मानव लक्ष्य को सफल बनाने योग्य शिक्षा व व्यवस्था की अपेक्षा प्रत्येक व्यक्ति में किसी न किसी अंश में पायी जाती है जो चेतना विकास मूल्य शिक्षा पूर्वक राज्यनीति एवं धर्मनीति से ही सफल है। दोनों के मूल में मानवीयता पूर्ण व्यवस्था है ही जिसमें अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा की अवधारणा समायी है।

प्रेरक (नेतृत्व) के मूल में दर्शन एवं विचार क्षमता ही है, जो सफल होती है। प्रत्येक सुदृढ़ विचार का आधार दर्शन ही है। अन्ततोगत्वा दर्शन-क्षमता ही नेतृत्व-क्षमता सिद्ध होती है।

सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति रूपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ही सम्पूर्ण ज्ञान है। दर्शन में प्रकृति का विकासक्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति रूप में अध्ययन मानव के लिए प्रस्तावित है जो स्वयं समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद तथा अनुभवात्मक अध्यात्मवाद को स्पष्ट करता है, जिससे “प्रमाणत्रय” (प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभव) सिद्ध होता है। मानव जीवन में “चतुरायाम” उत्पादन, व्यवहार, विचार एवं अनुभूति अविभाज्य हैं जो प्रसिद्ध है, इसलिए व्यवहारात्मक जनवाद का प्रत्यक्ष रूप न्याय-सुलभ, समृद्ध जीवन में प्रतिष्ठित एवं अक्षुण्ण होना है। यही मानव में अखंडता को स्थापित करता है,

जिसकी पूर्ण सभांवना व आवश्यकता है ही ।

1. मानव संबंधों सहित ही जन्म लेता है ।
2. स्थापित संबंध में स्थापित मूल्य है ।
3. सामाजिक मूल्य अपरिवर्तनीय है ।
4. मानवीयता में ही अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा सिद्ध होती है ।
5. मानवीयता जागृत मानव परंपरा में ही प्रमाणित होता है ।
6. जागृत मानव सामाजिक न्यायिक इकाई है ।
7. सामाजिक मूल्य में, से, के लिए शिष्टता एवं वस्तु व सेवा की प्रयुक्ति सफल है ।
8. मानव में स्वभाव सहज अभिव्यक्ति, धर्म सम्पन्नता अनुभूति प्रसिद्ध है ।

समाधानात्मक भौतिकवाद की चरितार्थता आवश्यकता से अधिक उत्पादन है, जो अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा के रूप में मानवीयता में दृष्टव्य है । यही मानव की चिर-कामना है, जिसका पालन पाँचों स्थितियों में, मानवीयता पूर्वक होता है । अमानवीयता में इसकी अवहेलना होती है, अतिमानवीयता पूर्वक स्वभावतः चरितार्थ होती है । चरितार्थता ही मानव का अभीष्ट है ।

आशा, आवश्यकता तथा अनिवार्यता पूर्वक किया गया प्रयास ही अभीष्ट है, इससे विहीन कार्यकलाप मानव में सफल नहीं होता है । अस्तित्व में जागृतिपूर्वक मानव स्पष्टाधिकार सम्पन्न एवं क्षमता को स्पष्ट करता है, जो एकसूत्रता, सार्वभौमता है ।

सामाजिक मूल्य अनुभव में, शिष्ट मूल्य व्यवहार में एवं

भौतिक मूल्य उत्पादन उपयोगिता में स्पष्ट है ।

व्यवहार एवं अनुभव निर्विरोधिता ही समाधान है । यही समाधानात्मक भौतिकवाद को स्पष्ट करता है क्योंकि व्यवहार का आधार अनुभव है तथा उत्पादन, उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता एवं वितरण का आधार समाधान है । यही समाज एवं सामाजिकता है ।

उपयोगिता-मूल्य आवश्यकता में, आवश्यकता-मूल्य शिष्टता में, शिष्टता-मूल्य स्थापित मूल्य में, स्थापित मूल्य मानव मूल्य में, मानव मूल्य जीवन मूल्य में समर्पित पाये जाते हैं । स्थापित मूल्य ही जीवन एवं जीवन के कार्यक्रम का आधार है, इसी आधार पर संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था हैं न कि केवल उत्पादन पर क्योंकि उत्पादन मानव के अधीन है न कि उत्पादन के अधीन मानव ।

संबंध व स्थापित मूल्य केवल अखण्ड समाज के अर्थ में है, अखण्ड समाज सह-अस्तित्व में अनुभव का फलन है जो केवल अनुभव प्रमाण से तथा उत्पादन-मूल्य प्रयोग प्रमाण से प्रमाणित है ।

जड़-चैतन्यात्मक इकाईयों की स्थिति गति केवल मूल्यों में, से, के लिए ही है । सभी अवस्था और पद में प्रतिष्ठित इकाईयों का मूल्य उन-उन के स्वभाव और आचरण के आधार पर गण्य है ।

मानव में जो मूल्य-दर्शन-क्षमता है, वही मानव को व्यवहार, उत्पादन, विचार एवं अनुभूति में, से, के लिए प्रेरित करती है । यही सामाजिकता एवं बौद्धिकता का आधार है । मानव सामाजिक, न्यायिक इकाई एवं बुद्धिपूर्वक, समझदारी पूर्वक जीने वाला अर्थात् विवेक विज्ञान पूर्वक जीने वाला से भी संबोधित है, इस संबोधन का अभीष्ट भी इसी क्षमता का निर्देश करता है । यह संबोधन अनुभव बोध पूर्वक



चारों आयामों में प्रमाणित होने से सार्थक है।

अखण्ड समाज दश सोपानीय व्यवस्था है यही जागृत मानव परम्परा सहज वैभव है।

समाज का प्राथमिक रूप : समझदार परिवार

समाज का द्वितीय रूप : अखण्ड समाज (राष्ट्र)

समाज का तृतीय रूप : पृथ्वी अखण्ड समाज  
सार्वभौम व्यवस्था

“सभी राज्य संस्थाएं अखण्ड समाज के अर्थ में हैं।” परिवार भी अखण्ड समाज के अर्थ में प्राथमिक एक घटक है। इस स्थिति में मुख्यतः सह-अस्तित्व प्रमाणित होता है। ऐसे अनेक परिवार मिलकर सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करते हैं। ऐसी भागीदारी स्वयं राज्य संस्थाओं के रूप में गण्य होता है। इसी क्रम में अर्थात् समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने के क्रम में विश्व परिवार सभा पर्यन्त भागीदारी सम्पन्न होती है।

मानव में अनुभव बोध सम्पन्नता ही प्रबुद्धता है। यही शिक्षा व्यवस्था का आद्यान्त लक्ष्य है जो कारण, सूक्ष्म, स्थूल तत्वों का अध्ययन है। जिसमें ज्ञान, विवेक, विज्ञान पूर्वक अखण्ड समाज एवं सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होती है।

दश सोपानीय व्यवस्था सहज चारों आयामों की एकसूत्रता ही अखण्ड समाज है जिसकी प्रभुसत्ता संज्ञा है। यह सह-अस्तित्व सहज सम्पूर्ण मूल्यों का प्रमाण एवं परंपरा ही है। सम्पूर्ण मानव में प्रबुद्धता का ही परावर्तित रूप प्रभुसत्ता है जो मानवीयतापूर्ण शिक्षा व्यवस्था, विधि, नीति पूर्वक सफल है।

नियम, न्याय, धर्म एवं सत्य देश कालातीत हैं, अतः सार्वभौमिक हैं। इसलिए सार्वभौमिकता ही अप्रतिमता, अप्रतिमता ही मध्यस्थता, मध्यस्थता ही प्रबुद्धता, प्रबुद्धता ही विज्ञान व विवेक, विज्ञान व विवेक ही सम्प्रभुता, सम्प्रभुता ही अखण्डता, अखण्डता ही समाधान एवं समृद्धि, समाधान एवं समृद्धि ही सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व ही जीवन एवं जीवन ही नियम, न्याय, धर्म एवं सत्य है। मानव जीवन कार्यक्रम में विधि, नीति एवं व्यवस्था का समाहित रहना प्रसिद्ध है।

विधि विहित नीति व व्यवस्था ही चारों आयामों एवं दश सोपानीय व्यवस्था की एकसूत्रता को स्थापित करती है। यही जागृत जीवन का प्रत्यक्ष रूप एवं कार्यक्रम है। यही अभ्यास का फलन है। यही जागृत मानव परम्परा का अभ्यास और अभ्यास का वैभव है।

जागृति क्रम और जागृति परम्परा में अनिवार्य क्रिया, प्रक्रिया, स्थिति एवं स्थितिशीलता व गति ही सार्वभौमिकता है। जैसे-मानव के लिए मानवीयतापूर्ण क्रियाकलाप।

### सार्वभौमिकता ही निर्विवाद एवं समाधान है।

ज्ञानावस्था की इकाई में निर्विवाद की आशा आकांक्षा है। साथ ही उसमें पूर्णता के लिये प्रयास भी साम्यतः पाया जाता है। इसकी अपर्याप्तता ही है, जो प्रभुसत्ता में, से, के लिये विविधता है। यही द्रोह, विद्रोह, आतंक तथा युद्ध है, जबकि यह सब मानव की वांछित (आशित) घटना, स्थिति या परिस्थिति नहीं है।

समृद्धि, समाधान, अभय एवं सह-अस्तित्व ही मानव कुल की सार्वभौमिक आकांक्षा है।

प्रभुसत्ता प्रतिष्ठा तब-तक परिपूर्ण नहीं है जब तक अभयता

को प्रदान करने में समर्थ न हो जाए।

प्रभुसत्ता ही अभयता, अभयता ही क्रम, क्रम ही जागृति, जागृति ही अनिवार्यता, अनिवार्यता ही प्रबुद्धता, प्रबुद्धता ही जीवन सफलता और जीवन सफलता ही प्रभुसत्ता है।

मानवीयता से ही प्रभुसत्ता प्रतिष्ठा एवं उसकी अक्षुण्णता है।

**वर्ग विहीन अखण्ड समाज ही प्रबुद्धता का प्रमाण रूप है।**

प्रत्येक मानव में पाये जाने वाले अनुभव के लिये कारण, विचार के लिये सूक्ष्म, व्यवहार के लिये सूक्ष्म-स्थूल तथा उत्पादन के लिये स्थूल तथ्यों का अध्ययन है, जो प्रत्यक्ष है।

अध्ययन से वैचारिक नियंत्रण, शिक्षा से व्यवहारिक नियंत्रण एवं प्रशिक्षण से उत्पादन में नियंत्रण प्रसिद्ध है।

वैचारिक नियंत्रण ही प्रधान उपलब्धि है, यही वैचारिक परिमार्जन संस्कार एवं गुणात्मक परिवर्तन है।

व्यवहार व उत्पादन के लिए विचार ही आधार है। विचार ही सामाजिक एवं असामाजिक है। अध्ययन की चरितार्थता ही स्वयं में, से, के लिए स्पष्ट होना है। वह चैतन्य क्रिया एवं क्रियाकलाप ही है, यही बौद्धिक अध्ययन है।

“नियमत्रय” सम्पन्न विचार ही व्यवहार में सामाजिक तथा उत्पादन में सफल हैं।

न्यायपूर्ण जीवन ही सामाजिकता का प्रत्यक्ष रूप है। संबंधों में निहित स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही न्यायपूर्ण व्यवहार है।

न्यायपूर्ण विचार ही प्रबुद्धता के रूप में है। न्यायपूर्ण जीवन ही संयत जीवन है, यही अपव्यय एवं भय से मुक्ति है।

अपव्यय एवं भय में सामाजिकता नहीं है।

### संबंध और मूल्य

प्रत्येक संबंध में स्थापित एवं शिष्ट मूल्य स्पष्ट व प्रमाणित हैं। जैसे :-

1. माता-पिता के प्रति विश्वास निर्वाह-निरंतरता = गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सरलता, सौम्यता, अनन्यता-भावपूर्वक वस्तु व सेवा के समर्पण रूप में है।
2. पुत्र-पुत्री के प्रति विश्वास निर्वाह-निरंतरता = ममता, वात्सल्य, प्रेम, सहजता, अनन्यता-भावपूर्वक वस्तु व सेवा के समर्पण रूप में है।
3. भाई-बहन की परस्परता में विश्वास-निर्वाह-निरंतरता = सम्मान, गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सौहार्द्रता, सरलता, सौजन्यता, स्नेह, अनन्यता-भावपूर्वक वस्तु व सेवा अर्पण के रूप में है।
4. गुरु-शिष्य के प्रति विश्वास-निर्वाह-निरंतरता = प्रेम, वात्सल्य, ममता, अनन्यता, सहजता, भावपूर्वक प्रबोधन जिज्ञासा पूर्ति सहित वस्तु व सेवा-समर्पण के रूप में है।
5. शिष्य-गुरु के प्रति विश्वास-निर्वाह-निरंतरता=गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सरलता, सौजन्यता, अनन्यता-भावपूर्वक जिज्ञासा सहित वस्तु व सेवा-समर्पण के रूप में है।
6. पति-पत्नी की परस्परता में विश्वास निर्वाह-निरंतरता = स्नेह, गौरव, सम्मान, प्रेम, निष्ठा, सौहार्द्रता, अनन्यतापूर्वक

- सद्चरित्रता सहित वस्तु एवं सेवा अर्पण के रूप में है।
7. साथी-सहयोगी के प्रति विश्वास-निर्वाह-निरंतरता (व्यवस्था तंत्र में) = स्नेह, सौजन्यता, निष्ठापूर्वक वस्तु व सेवा प्रदान के रूप में है।
  8. सहयोगी-साथी के प्रति विश्वास-निर्वाह-निरंतरता (व्यवस्था तंत्र में) = गौरव, सम्मान, कृतज्ञता, सौहार्द्रता, सौम्यता, सरलता, भावपूर्वक सेवा समर्पण के रूप में है।
  9. मित्र की परस्परता में विश्वास निर्वाह, निरंतरता = स्नेह, प्रेम, सम्मान, निष्ठा, अनन्यता, सौहार्द्रता भावपूर्वक वस्तु व सेवा समर्पण के रूप में है।
  10. व्यवस्था के प्रति भागीदारी का विश्वास निर्वाह, निरंतरता = मानवीयतापूर्ण आचरण, व्यवहार, उत्पादनपूर्वक आवश्यकता से अधिक उत्पादन।
  11. भागीदारी के प्रति व्यवस्था विश्वास निर्वाह, निरंतरता = न्याय सम्मत अभयतापूर्ण जीवन के कार्यक्रम के लिए शिक्षा को सर्वसुलभता न्याय सम्मत आचरण तथा व्यक्तित्व के संरक्षण, संवर्धन, प्रोत्साहन सहित असंदिग्ध न्यायिक व्यवस्था के रूप में है।
  12. व्यवस्था सहज परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता = स्थायी मूल्यों में आधारित विधि, शिष्ट मूल्यों में आधारित नीति, उत्पादन मूल्यों में आधारित व्यवस्था पूर्वक सिद्ध न्याय व समाधान सर्व सुलभता के रूप में है।
  13. व्यवस्था एवं संस्कृति की परस्परता में विश्वास निर्वाह =

न्याय संगत प्रक्रिया में आश्वासन विश्वसन पूर्वक न्यायानुगमन कार्यक्रम सहित व्यक्तित्व के प्रस्थापन के रूप में है।

14. सभ्यता एवं संस्कृति की परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता = नौ स्थापित मूल्य में नौ शिष्ट मूल्य, नौ शिष्ट मूल्य में दो उत्पादन मूल्य का अर्पण, समर्पण, समावेश के रूप में है।
15. सभ्यता -विधि की परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता = प्रबुद्धता, संप्रभुता के रूप में है।

स्थापित नौ मूल्यों “में, से, के लिये” विश्वास-साम्य मूल्य है, जिसके बिना कोई ऐसा संबंध नहीं है जो स्वस्थ हो।

**प्रेम पूर्ण मूल्य है।** प्रेम अन्य आठों मूल्यों के रूप में प्रकारान्तर से है, क्योंकि प्रत्येक स्थापित मूल्य प्रेम से संबंधित है, जो अनुभव पूर्वक सिद्ध है। यही प्रमाण है।

“सत्य ही प्रेम, प्रेम ही पूर्ण, पूर्ण ही अनुभव, अनुभव ही सत्य है। इसलिए पूर्ण मूल्य में स्थापित मूल्य, स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य एवं शिष्ट मूल्य में उत्पादन मूल्य समर्पित है।”

**गुरु मूल्य में लघु मूल्य समाया हुआ है।** इसलिये जागृति विकास क्रम में गुणात्मक प्रगति है। इसी क्रम में चैतन्य प्रकृति है। इसके गुणात्मक परिवर्तन के फलस्वरूप ही निर्भ्रमावस्था भी प्रसिद्ध है। यही निर्भ्रम अवस्था पूर्ण मूल्यानुभूति योग्य क्षमता है, इसलिये गुणात्मक परिवर्तन के लिये चैतन्य प्रकृति प्रवृत्त है।

**मानव न्यायपूर्ण आचरण पूर्वक निर्भय व समाधानित है।**

प्रत्येक मानव न्यायपूर्ण जीने का इच्छुक है, यही सत्यता सामाजिक अखण्डता का आधार है।

परिवार ही बुनियादी व्यवस्था, न्याय एवं शिक्षा है। प्रत्येक मानव के जीवन जागृति और प्रमाणित होने का आधार भी यही है।

मानव का प्रथम परिचय परिवार में स्पष्ट होता है। प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का संतुलन व्यवहार में प्रमाणित होता है एवं आचरण-प्रकटन का भी परिवार ही बुनियादी क्षेत्र है, उसकी विशेषतानुसार ही विशाल एवं विशालतम सीमा सिद्ध होती है।

समग्रता के अध्ययन को सुलभ बनाना एवं विधि व्यवस्था को सफल बनाना ही मानवीय संस्कृति सभ्यता की अक्षुण्णता को पाना है। यही व्यवहारात्मक जनवाद का प्रत्यक्ष रूप है।

मानव जागृति के अर्थ में गुणात्मक एकता की संभावना है, भोगात्मक भ्रमात्मक एकता की संभावना नहीं है।

मानव मानवीयता के अर्थ में ही गुणात्मक एकता के लिए तृषित है। अस्तु, न्याय का ध्रुवीकरण उसी सीमा में है। “मानव न्याय का याचक है।” इसलिए संज्ञानशील ही एकता के लिये दिशा है, जो बोध, संबोध, प्रबोध-क्षमता के रूप में प्रत्यक्ष है। साथ ही यही अग्रिमता का कारण है एवं गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक सतर्कता तथा सजगता के रूप में स्पष्ट है।

संचेतनशील क्षमता ही अनुभव में परमानन्द प्रतिष्ठा, विचार में समाधान प्रतिष्ठा, व्यवहार में प्रेम प्रतिष्ठा है। इस प्रतिष्ठात्रय के लिये मानव अनवरत पिपासु रहा है। “प्रतिष्ठात्रय ही मानव प्रकृति का लक्ष्य है।” वादत्रय का भी अभीष्ट यही है। इसलिए लक्ष्य की अपेक्षा में ही सही-गलत, उचित-अनुचित, विधि-निषेध, पाप-पुण्य

का निर्धारण होता है। नियम से ही सुख व दुःख, जागृति व हास दृष्टव्य है।

अनुभवात्मक अध्यात्मवाद का लक्ष्य परमानन्द प्रतिष्ठा, समाधानात्मक भौतिकवाद का लक्ष्य समाधान प्रतिष्ठा एवं व्यवहारात्मक जनवाद का लक्ष्य न्याय और प्रेम प्रतिष्ठा सूत्र है। यही लक्ष्यत्रय केवल संज्ञानशीलता की गरिमा है। यही इसकी क्षमता, योग्यता, पात्रता में गुणात्मक परिवर्तन का मूल कारण है।

समाधान प्रतिष्ठा की निरंतरता = प्रेम प्रतिष्ठा

प्रेम प्रतिष्ठा की निरंतरता = परमानन्द प्रतिष्ठा है।

प्रेम प्रतिष्ठा ही सतर्कता, परमानन्द प्रतिष्ठा ही सजगता है। वृत्ति व चित्त की एकसूत्रता में समाधान, चित्त व बुद्धि की एकसूत्रता में प्रेम, बुद्धि व आत्मा की एक सूत्रता में परमानन्द प्रतिष्ठा पायी जाती है। यही जागृत मानव में, से, के लिए सहज प्रतिष्ठा है।

न्यायपूर्ण व्यवहार = सुख

सुख की निरंतरता = शान्ति

शान्ति की निरंतरता = संतोष

संतोष की निरंतरता = आनन्द

आनन्द की निरंतरता = परमानन्द

नियम पूर्ण उत्पादन, न्यायपूर्ण व्यवहार एवं धर्मपूर्ण विचार = मानवीयतापूर्ण जीवन व अतिमानवीयता की ओर स्पष्ट संभावना एवं अध्ययन

मानवीयतापूर्ण जीवन व अतिमानवीयता की स्पष्ट संभावना

एवं अध्ययन = निर्भ्रम ज्ञान

निर्भ्रम ज्ञान = विवेक सम्मत विज्ञान

विवेक व विज्ञान = बौद्धिक समाधान व भौतिक समृद्धि

भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान = सह-अस्तित्व

सह अस्तित्व = अखंडता

अखंडता = सामाजिकता

सामाजिकता = स्वर्गीयता

स्वर्गीयता = अभय

अभय = सुख, शांति, संतोष, एवं आनन्द

मन तथा वृत्ति का निर्विरोध = सुख

वृत्ति व चित्त का निर्विरोध = शांति

चित्त व बुद्धि का निर्विरोध = संतोष

बुद्धि व आत्मा का निर्विरोध = आनन्द

परम सत्य रूपी सह-अस्तित्व में अनुभूति = परमानन्द

ऐसी अनुभूति ही चैतन्य प्रकृति का चरमोत्कर्ष विकास है ।  
यही परमानंद है ।

**मूलतः जागृत मानव अनुभूति एवं दृष्टा पद में प्रतिष्ठित हैं ।** अनुभव मूलक व्यवहार समाधान, समृद्धि मूलक उत्पादन ही मानव जीवन की चरितार्थता है ।

स्थापित मूल्यों का अनुभव होता है । उत्पादन पक्ष में समृद्धि ही अनुभव है । जिसके लिये ही सम्पूर्ण प्रयास है । यही इस सत्यता

को स्पष्ट करता है कि जीवन सहज कार्यक्रम केवल अनुभव ही है ।

**सत्ता ही स्थितिपूर्ण है ।** प्रकृति स्थितिशील है । प्रकृति में विविधता है । यही स्वयं जागृति क्रम व्यवस्था एवं स्थितिवत्ता है । ऐसी स्वीकार योग्य क्षमता का होना या न होना ही जागृति क्रम स्थिति है ।

जागृति को प्रमाणित करने के अर्थ में किये गये सभी कार्य व्यवहार उचित है । जो अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होते हैं । ये सब औचित्यता की कसौटी हैं ।

औचित्यता की स्वीकृति से ही संयमता स्पष्ट होती है जो गुणात्मक परिवर्तन के लिए स्वीकृति है ।

संपूर्ण इच्छाएं मूल्यों में, से, के लिए ही हैं ।

मूल्यों में, से, के लिए पूर्णता के संदर्भ में इच्छाओं का प्रसव है ।

पूर्ण मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य, उपयोगिता मूल्य एवं सुन्दरता मूल्य ही मूल्य-समुच्चय है ।

**उपयोगिता मूल्य में, सुन्दरता एवं सुन्दरता मूल्य में उपयोगिता समाविष्ट हैं ।**

गुरु मूल्य में लघु मूल्य समाया है ।

**संपूर्ण मूल्य का केवल अनुभव ही है ।**

अनुभव केवल सत्य, सत्य ही पूर्ण मूल्य, पूर्ण मूल्य ही प्रेम, प्रेम ही आनन्द, आनन्द ही अनुभव है । इसी का प्रत्यक्ष रूप सजगता

है। जो मानव का अभीष्ट है।

पूर्ण मूल्य में ही जीवन, जीवन का कार्यक्रम स्पष्ट होता है। स्थापित मूल्य के मूल में पूर्ण मूल्य ही मात्र आधार है। जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति केवल सत्ता में ही है।

“ज्ञान ही प्रेम एवं प्रेम ही ज्ञान है।” प्रेम अधिक और कम से मुक्त है, ज्ञानानुभूति ही प्रेम एवं प्रेम का आधार ज्ञान है। यही पूर्णता का प्रधान लक्षण है। स्थापित मूल्य प्रेम की ही स्थिति है।

समस्त स्थापित मूल्य प्रेम में, से, के लिए ओत-प्रोत है जिसकी सत्यता स्थिर है। यह त्रिकालाबाध है।

अभयता ही सामाजिकता का प्रत्यक्ष रूप है, यही प्रबुद्धता का भी परिचय है, जिसके बिना मानव जीवन में स्थिरता नहीं है।

स्थिरता का तात्पर्य मानव में अनुभव से है, अनुभव सार्वभौमिक रूप में स्थापित मूल्य है।

अनुभव विहीन मानव सामाजिक नहीं है। सामाजिकता में, से, के लिए अनुभव क्षमता अनिवार्य है। मानवीयता में ही अनुभव, अतिमानवीयता में अनुभव एवं उपकार पूर्ण वैभव प्रसिद्ध है।

अखण्ड सामाजिकता ही मानव जीवन की स्थिरता का प्रत्यक्ष रूप है जो स्थापित मूल्यों की अनुभव योग्य क्षमता पर आधारित है। यह शिक्षा एवं व्यवस्था प्रबुद्धता पर आधारित है।

प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का संतुलन ही जागृति का प्रत्यक्ष रूप है। यही प्रबुद्धता, संयमता, निर्विषमता, सहजता, अभयता, सामाजिकता, प्रतिभा एवं व्यक्तित्व है।

वस्तुगत व वस्तुस्थिति का दर्शन एवं सहअस्तित्व में अनुभव

ही व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संतुलन है।

मानवीयतापूर्ण जीवन ही संयत जीवन का प्रत्यक्ष रूप है। मानवीयतापूर्वक किया गया आहार, विहार एवं व्यवहार का सम्मिलित रूप ही व्यक्तित्व है। यही अभ्यास एवं जागृति में पाया जाने वाला सर्वतोमुखी विकास है। यही अभ्युदयशील होने का प्रत्यक्ष लक्षण है। इसलिए “सुख, शांति, संतोष एवं आनंद स्थापित मूल्यों के अनुभव में ही है। पूर्ण मूल्य में अनुभव ही परमानंद है।”

सुन्दरता एवं उपयोगिता मूल्य की स्थिरता नहीं है क्योंकि उपयोगिता एवं सुन्दरता स्वयं में एक सी नहीं है, यह सामयिक है, जिसके साक्ष्य में :-

1. शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंधेन्द्रियों में आवश्यकताएं सामयिक हैं।
2. क्षुधा, पिपासा सामयिक हैं।
3. संपूर्ण उपयोग सामयिक है।
4. महत्वाकांक्षा, सामान्याकांक्षा से संबंधित उपयोग सामयिक हैं।
5. विनियम सामयिक है।
6. वस्तु व सेवा का नियोजन सामयिक है।

इसलिए उपयोगिता व सुंदरता मूल्य सामयिक सिद्ध है।

स्थापित मूल्य, मानव मूल्य, जीवन मूल्य देशकाल से बाधित (सीमित) नहीं है। प्रत्येक संबंध में निहित स्थापित मूल्य निकट व दूर, भूत भविष्य एवं वर्तमान से प्रभावित नहीं है। प्रत्येक स्थापित मूल्य तीनों कालों में एवं सभी देशों में एक सा है।

यह अपरिवर्तनीयता स्वयं में स्पष्ट करती है कि स्थापित मूल्य ही नित्य है, जबकि प्रत्येक इकाई में पाई जाने वाली उपयोगिता एवं सुंदरता का परिणाम व परिवर्तन प्रसिद्ध है।

“मूल्य मात्र अनुभव ही है।”

क्रिया में मूल्यों की स्थिति का अभाव नहीं है। उसे अनुभव करने की क्षमता के अभाव में वह रहस्य, अज्ञात एवं अप्राप्त है।

उपयोगिता मूल्यों के आधार पर समाज की स्थायी संरचना संभव नहीं है क्योंकि वह स्वयं में स्थायी नहीं है।

स्थापित मूल्यों पर ही समाज संरचना की दृढ़ता स्पष्ट है। यही सत्यता मानव को अमानवीयता से मुक्त होकर मानवीयता से संपन्न होने के लिए प्रेरित करती है।

**अर्थ ही मूल्य, मूल्य ही अर्थ है।** उपयोगिता-मूल्य, शिष्ट-मूल्य में एवं शिष्ट-मूल्य स्थापित मूल्य में समर्पित पाया जाता है। यही संयमता का प्रत्यक्ष रूप है।

मूल्य-दर्शन एवं अनुभव-क्षमता ही संस्कार का प्रत्यक्ष रूप है। संस्कार विहीन मानव नहीं है। मानव का संपूर्ण संस्कार मानवीयता तथा अतिमानवीयता में ही प्रत्यक्ष है।

संस्कार परिवर्तन केवल शिक्षा एवं व्यवस्था से ही है क्योंकि त्रुटिपूर्ण शिक्षा व व्यवस्था के द्वारा ज्ञानी-अज्ञानी, विवेकी-अविवेकी, सबल-दुर्बल एवं अन्य किसी को भी संतुष्टि, समाधान व अभय प्रदान करना संभव नहीं हुआ है, जो स्पष्ट है।

स्थापित मूल्य तथा शिष्ट मूल्य का योगफल ही सामाजिक मूल्यवत्ता है। इसी के आधार पर संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था

का प्रथम संरचना प्रारूप है एवं संचालन प्रक्रिया भी है।

सामाजिक मूल्यों की स्वीकार क्षमता = संस्कृति

सामाजिक मूल्यों की वहन क्षमता = सभ्यता

उपयोगिता व सुंदरता मूल्य समाज मूल्य में समाहित या समर्पित है। व्यवहार में ही इन दोनों की प्रयुक्ति है। इसलिए संपूर्ण प्रयुक्तियाँ जीने के लिए अथवा जीवन के लिए ही है। “**शरीर के लिए समृद्धि एवं जीवन के लिए समाधान व अनुभूति आवश्यक तथा अनिवार्य है।**”

समाधान व अनुभूति ही मानव में पाई जाने वाली विशिष्टता है। यही प्रबुद्धता, प्रभुता एवं अभयता है।

मानव में आवश्यकता से अधिक उत्पादन, न्यायपूर्ण आचरण व्यवहार के रूप में अनुभव प्रत्यक्ष है।

शिष्ट मूल्य ही अनुभव को इंगित करता है, यही सभ्यता व शिक्षा है। प्रत्येक मानव में किसी से शिक्षित होना या किसी को शिक्षित करना प्रसिद्ध है। शिष्टता में ही उपयोगिता व सुंदरता संयत रूप में प्रयुक्त होती है। संयमता ही सदुपयोग है। सदुपयोग एवं सुरक्षा ही सतर्कता का प्रत्यक्ष रूप है। यही सामाजिकता का कार्य-कारण एवं लक्ष्य भी है।

**शिष्टता की अभिव्यक्ति प्रसिद्ध है।** मानवीयता में शिष्टता की प्रतिष्ठा व अखण्डता है। यही सफल जीवन का प्रत्यक्ष रूप है, जो अखण्ड समाज दश सोपानीय व्यवस्था में अनिवार्यतः अनुवर्तनीय है।

## मानव संस्कृति

मानवीयतापूर्ण आचरण एवं व्यवहार को स्मरण में लाने, प्रेरणा प्रदान करने एवं मार्गदर्शन कराने योग्य क्षमता ही मानव संस्कृति है।

संस्कृति को आचरण में लाना ही सभ्यता है। दायित्व व कर्तव्य निर्वाह ही उसका प्रत्यक्ष रूप है।

मानव-संस्कृति एवं सभ्यता ही सामाजिकता को सिद्ध करती है। यही मानव की उपलब्धि, लक्ष्य एवं कार्यक्रम है।

संस्कृति व सभ्यता का योगफल ही सामाजिकता है, जिसे वहन करना ही समाज है। यही विधि व व्यवस्था का प्राण और त्राण है।

संस्कृति ही विधि एवं सभ्यता ही नीति है। विधि व नीति की संयुक्त प्रक्रिया ही व्यवस्था है।

व्यवस्था की चरितार्थता संस्कृति व सभ्यता के रूप में प्रत्यक्ष है। इसलिए नियंत्रण विहीन इकाई नहीं है। यही समाधान, न्याय एवं संयम है। संयम ही सामाजिक आचरण है। मानव में, से, के लिए कायिक, वाचिक, मानसिक संयम (नियंत्रण) प्रसिद्ध है।

जागृति अनुरूप नियंत्रण प्रकृति के “चक्रत्रय” में दृष्टव्य है। प्रत्येक मानव में संयमता बौद्धिक, सामाजिक एवं प्राकृतिक क्षेत्र में

अनुभव, समाधान, व्यवहार, आचरण एवं उत्पादन के रूप में प्रत्यक्ष है।

अनुभव-प्रतिष्ठा एवं समाधान-क्षमता में, से, के लिए मानव ने अनवरत प्रयास किया है। प्रत्येक प्रयास में जागृति अभिलाषा समायी हुई है।

जागृति अभिलाषा अनुरूप प्रयास से गुणात्मक परिवर्तन, निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य पूर्वक सफल हैं।

आभास सहित आशा ही अभिलाषा है। भास, आभास एवं प्रतीति पूर्वक प्रयास में, से, के लिए संभावनायें प्रत्येक मानव में पाया जाता है।

अनुभव के पहले अनुमान-घटना का होना आवश्यक है। प्रत्येक मानव का प्रत्येक क्षण किसी न किसी घटना या अनुमान सहित है।

अनुमानातीत रूप में जो घटनाएं क्रम से प्रत्यक्ष होती हैं वह आगम क्रिया है। प्रत्येक अनुमान अनुभव पर आधारित अन्यथा अनुभव के लिए सन्निहित है। प्रत्येक अनुमान अनुभव के पूर्वापर में है। अनुमान ही शोधपूर्वक भास, आभास एवं प्रतीति के रूप में उदय होता है। जिसके आधार पर ही मानव में योजना, विचार एवं कल्पना का प्रसव होता है जो अनुभव में प्रमाणित होता है। अध्ययन पूर्ण क्रियाएं स्पष्ट योजना एवं प्रमाणों के रूप में, विचार पूर्ण क्रियाएं योजनात्मक कार्य-व्यवहार के रूप में, कल्पनात्मक क्रियाओं की उपादेयता अग्रिम शोध एवं अनुसंधान के लिए उपयोगी सिद्ध है। यही मानव के उत्थान, प्रगति, सद्गति, विकास, संतुलनपूर्वक सामाजिक जीवन के रूप में प्रत्यक्ष है जो सह-अस्तित्व है।



### स्वयं में विश्वास क्रम में व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संरक्षण ही अर्थ का संरक्षण है ।

यही मानव जीवन का आद्यान्त अर्थ है । व्यक्तित्व व प्रतिभा सम्पन्न विचार ही आचरण, व्यवहार, उत्पादन तथा व्यवस्था में भागीदारी है । व्यक्तित्व ही न्याय पूर्ण जीवन है । **प्रतिभा स्वयं की स्थिति एवं व्यवस्था में विस्तार ही है ।** व्यक्तित्व का यह आचरण ही अर्थ का सदुपयोग पूर्वक संरक्षण स्पष्ट रूप में प्रतिभा का उदय है जो अनुकरणीय है । व्यक्तित्व और प्रतिभा का संतुलन ही जीवन है, जो सतर्कता एवं सजगता है । मानवीयता पूर्वक ही व्यक्तित्व पूर्ण होता है । “तात्रय” से अतिरिक्त मानव में, से, के लिये अभिव्यक्ति नहीं है । इसलिए भाव = मौलिकता = स्वमूल्य तथा मूल्यांकन क्षमता = मौलिकता का भास, आभास, प्रतीति व अनुभूति = व्यक्ति की क्षमता, योग्यता, पात्रता = जागृति = वातावरण, अध्ययन और स्वसंस्कार = उत्पादन, व्यवहार, व्यवस्था में भागीदारी = भाव प्रसिद्ध है ।

सम्पूर्ण प्रकृति वस्तु समूह के रूप में दृष्टव्य है । जड़-चैतन्य के रूप में प्रकृति स्पष्ट है, जो दर्शन सुलभ निर्भ्रमता के लिये आवश्यक तथा आद्यान्त अध्ययन है । सत्ता व्यापक एवं चैतन्य प्रकृति में पूर्णता का ज्ञान एवं अनुभूति ही समग्र चैतन्य प्रकृति का अभीष्ट है ।

जागृति पूर्वक प्रतिभा और व्यक्तित्व व्यवस्था के अर्थ में संतुलन है । यही मानव का सफल जीवन है । यही अभ्यास का प्रधान लक्षण है । मानव के द्वारा स्पष्टतः किया जाने वाला मूल्यांकन दर्शन सत्तामय ज्ञानानुभूति ही अभ्यास का प्रधान लक्षण एवं उसकी सफलता है । यही उनकी क्षमता-योग्यता-पात्रता पर, यही उनकी जागृति विधि पर, यही संस्कार पर, यही शक्तियों के सदुपयोग एवं प्रयोजनशीलता

पर, यही वातावरण एवं अध्ययन पर, यही संस्कृति एवं सभ्यता पर, यही व्यवस्था पर, यही विधि व व्यवस्था नीति पर, यही प्रबुद्धता व प्रभु सत्ता पर, यही विवेक व विज्ञान के संतुलन पर, यही निपुणता-कुशलता-पांडित्य पर, यही दर्शन-ज्ञान, विवेक-ज्ञान पर आधारित पाया जाता है ।

पदार्थ व प्राणावस्था का मूल्यांकन उत्पादन निमित्त, जीवावस्था का मूल्यांकन उपयोगिता व पूरकता निमित्त, ज्ञानावस्था का मूल्यांकन सह-अस्तित्व में सतर्कता-सजगता सहित समाधान समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व के रूप में और मानवत्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में है ।

भौतिक समृद्धि, बौद्धिक समाधान, प्रतिभा एवं व्यक्तित्व की उपलब्धि है । यही दश सोपानीय व्यवस्था में सामाजिकता का प्रत्यक्ष रूप है, जो सफलता है । इसकी नित्य संभावना है । यही मानव की चिर अभिलाषा है । यह मानवीयता पूर्वक ही सफल होना प्रत्यक्ष है ।

**सम्यकता (पूर्णता) के प्रति जिज्ञासा ही संचेतना है ।** पूर्णता-क्रिया पूर्णता, आचरण पूर्णता के रूप में दृष्टव्य है । “अनुभूति ही सम्यकता का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।” इसी क्रम में सम्यक अनुभूति, सम्यक संकल्प (सम्यक बोध), सम्यक चिंतन, सम्यक विचार, सम्यक आशा के योगफल में ही प्रयोग एवं व्यवहार प्रमाण भी है । यही प्रमाण त्रय है । यही जीवन के कार्यक्रम को स्पष्ट करता है । जिससे बौद्धिक समाधान, भौतिक समृद्धि प्रकट होती है । यही मानव की चिर ईप्सा है । प्राप्य के प्रति तीव्र इच्छा ही ईप्सा है ।

ऐषणा-त्रय में, से, के लिये एक सूत्रता प्रतिस्थापित करने योग्य चिंतन प्रक्रिया ही ईप्सा है । यही चिंतन क्षमता की विशालता

को स्पष्ट करती है। चिंतनशीलता जीवन सहज कंपनात्मक गति की शालीनता है। कंपनात्मक गति स्पन्दनशीलता का परिचय ही है चिंतनशीलता। स्पष्टता हेतु की गयी धावन क्रिया ही स्पन्दन है। स्वयं तथा वातावरण में, से, के लिये ही धावन क्रिया प्रसिद्ध है। स्वयं तथा वातावरण से अधिक स्पष्टतावकाश, अवसर, आवश्यकता प्रमाणित नहीं है। स्पष्ट होना ही निर्भ्रमता है।

स्वयं की स्पष्टता चैतन्य क्रिया के रूप में है। वातावरण प्राकृतिक एवं वैयक्तिक भेद से गण्य है। वैयक्तिक वातावरण की स्पष्टता, अर्थ का उपार्जन, अर्थ का सदुपयोग, अर्थ की सुरक्षा, सामाजिक मूल्यों का शिष्ट मूल्यों सहित निर्वाह, शिक्षा, प्रसार, प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन एवं व्यवस्था के रूप में दृष्टव्य है। यही अखंड समाज की पुष्टि है।

विवेचनापूर्ण आचरण ही विचार है। विवेचनायें “तात्रय” की सीमा में मानव के संदर्भ में होती हैं। इसी श्रृंखला में जीवन का अमरत्व, शरीर का नश्वरत्व एवं व्यवहार का नियम संबंधी ज्ञान एवं तत्व-मीमांसा है। फलतः व्यवहारिक “नियम-त्रय” यथा प्राकृतिक, सामाजिक व बौद्धिक रूप में सिद्ध हुआ है।

संपूर्ण विवेचनायें परस्परता के निर्वाह में, से, के लिये हैं क्योंकि सत्ता में प्रकृति का वियोग नहीं है। अस्तु, प्रकृति में परस्परता का अभाव नहीं है। परस्परता का अभाव प्रमाण सिद्ध नहीं है। निर्भ्रमता ही जीवन में स्थिरता, जीवन के कार्यक्रम में दृढ़ता, स्वयं में पूर्णता, समाज में अखण्डता है। इसके लिये ही मानव ने अनवरत प्रयास किया है। मानव जीवन का कार्यक्रम केवल समाधानात्मक भौतिकवादीय, व्यवहारात्मक जनवादीय, अनुभवात्मक

अध्यात्मवादीय क्रम, नियम, नीति, सिद्धांत संबद्ध है।

समाधानात्मक भौतिकवादी कार्यक्रम की चरितार्थता आवश्यकता से अधिक उत्पादन के रूप में भी प्रस्तावित है, जिसके लिये मानव में शिक्षा एवं शैक्षणिक क्षमता, निपुणता एवं कुशलता के रूप में है। यही उत्पादन क्षमता है। यही क्षमता उपयोगिता एवं कला मूल्य को प्राकृतिक ऐश्वर्य पर प्रतिस्थापित करती है। व्यवहारात्मक जनवादीय जीवन का मूल तत्व जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य है। यह शिष्टता मानवीयता पूर्वक संयत सिद्ध हुई है। इसी शिष्ट मूल्य में उत्पादन मूल्य समर्पित है क्योंकि शिष्ट मूल्य के अभाव में उत्पादित वस्तु मूल्य का संयमन एवं सदुपयोग सिद्ध नहीं होता। अस्तु, उत्पादित वस्तु मूल्य शिष्ट मूल्य में; शिष्ट मूल्य स्थापित मूल्य में; स्थापित मूल्य मानव मूल्य में; मानव मूल्य जीवन मूल्य में संयोजित विधि से प्रमाणित होता है। शिष्ट मूल्य के संयोग में ही उत्पादित वस्तु मूल्य का सदुपयोग सिद्ध हुआ है। सामाजिक मूल्य के संयोग में ही उत्पादित वस्तु मूल्य का सदुपयोग सिद्ध हुआ है। सामाजिक मूल्य अर्थात् प्रत्येक संबंध में स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य वर्तमान होना पाया जाता है यही जागृति है। सामाजिक मूल्य में, से, के लिये ही शिष्ट मूल्य की गरिमा-महिमा गण्य है। सामाजिक मूल्य के अभाव में शिष्ट मूल्य की व्यवहारिक मीमांसा सिद्ध नहीं हुई है। अपितु स्थापित मूल्यों के अनुगमनशीलता में ही शिष्ट मूल्यों की मूल्यवत्ता एवं महत्ता स्पष्ट हुई है। अस्तु, स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य का समर्पित होना अवश्यंभावी है। स्थापित मूल्य का निर्वाह मानव मानवीयता पूर्वक करता है। यही मानव का व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संतुलन है। यही उसका आचरण है। इसके सहकारी परिवार, प्रोत्साहन योग्य समाज, संरक्षण-संवर्धन योग्य व्यवस्था अर्थात् विधि व्यवस्था

शिक्षा, संतुलन एवं अनुकूल परिस्थिति निर्माण करने योग्य अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था ही “वादत्रय” का चरितार्थ रूप है।

समाधानात्मक भौतिकवादीय सिद्धांतों के आधार पर ही कृषि एवं औद्योगिक कार्यों में अधिकाधिक व्यक्तियों की भागीदारी उत्पादनों की विपुलता चरितार्थतावश प्रत्यक्ष होती है।

व्यक्तित्व व उत्पादन क्षमता सम्पन्न करने का दायित्व शिक्षा व्यवस्था एवं नीति पर आधारित पाया जाता है। यही व्यवस्था का प्रत्यक्ष स्रोत है। प्रचार, प्रकाशन, प्रदर्शनपूर्वक उसे प्रोत्साहित करने का दायित्व विद्वता, कला, कविता सम्पन्न समाज का है जिनसे ही सामान्य जन जाति प्रेरणा पाती है, जो तथ्य है। परस्पर राष्ट्रों में संतुलन सामंजस्य एवं एकसूत्रता को पाने के लिये प्रत्येक राष्ट्र को मानवीयता पूर्वक “नियम-त्रय” का पालन करने के लिए उन्मुख होना ही होगा। सार्वभौमिकता ही सभी राष्ट्रों के अनुमोदन के लिये आधार रहेगा। सामाजिक सार्वभौमिकता अर्थात् अखंडता ही सभी राष्ट्रों का मूल आशय है। उसकी स्पष्ट सफलता न होने का कारण मात्र वर्गीयता है या वर्गीयता का प्रोत्साहन एवं संरक्षण है। यह सभी वर्गीयताएं मानवीयता में ही विलीन होती है न कि अमानवीयता में। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मानवीयतापूर्ण जीवन परम्परा ही एकमात्र शरण है। इसी का दश सोपानीय व्यवस्था में निर्वाह करना ही एकसूत्रता, अखंडता एवं समाधान सार्वभौमता है। प्रत्येक संतान को उत्पादन एवं व्यवहार एवं व्यवस्था में भागीदारी करने योग्य बनाने का दायित्व अभिभावकों में भी अनिवार्य रूप में रहता है क्योंकि प्रथम शिक्षा माता-पिता से, द्वितीय परिवार से, तृतीय परिवार के सम्पर्क सीमा से, चतुर्थ शिक्षण संस्थान से, पंचम वातावरण से अर्थात् प्रधानतः प्रचार-प्रकाशन-प्रदर्शन से तथा प्राकृतिक प्रेरणा से अर्थात् भौगोलिक एवं

शीत, उष्ण, वर्षामान से प्राप्त होती है।

प्राकृतिक नियमानुसार ही कृषि एवं उद्योग की सफलताएं नियंत्रित होना पाई जाती हैं। जिनकी निरंतरता अनादि काल से ज्ञातव्य है। इस भूमि पर वर्षा-शीत-उष्णमान के संतुलन के लिये समुचित वन क्षेत्र के अतिरिक्त भूमि के क्षेत्रफल पर कृषि कार्य को सम्पन्न करने का अधिकार मानव को है। प्रत्येक भूमि में खनिज द्रव्य की ससीमता है क्योंकि भूमि स्वयं सीमित है। जिन खनिजों की क्रमिक उत्पत्ति है उन पर आधारित उद्योगों को विकसित एवं समृद्ध बनाना मंगल होगा। इसी आधार पर विस्तारित कृषि एवं उद्योग पूर्णतया सफल एवं उसकी भी अक्षुण्णता सिद्ध है।

प्राकृतिक ऐश्वर्य का मूल्य = शून्य, क्योंकि प्राकृतिक ऐश्वर्य के निर्माण में मानव का श्रम नियोजन सिद्ध नहीं हुआ है। प्रत्येक पीढ़ी अग्रिम पीढ़ी को जिन साधनों को प्रदान करती है वह उसकी अक्षुण्णता चाहती है न कि विनाश। यह सार्वभौम रूप में पायी जाने वाली मनोवैज्ञानिक अपेक्षा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मानव प्रत्येक मानव, समाज प्रत्येक समाज, वर्ग प्रत्येक वर्ग, राष्ट्र प्रत्येक राष्ट्र अथक प्रयास से जितने भी साधनों का निर्माण करते हैं उनमें स्वयं के उपयोग से अतिरिक्त अग्रिम पीढ़ी के लिए सुगम सन्निवेश (साधन सम्पन्न भविष्य) निर्माण करने का मंगलमय आशय एवं संकल्प समाया हुआ है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि जो जिन साधनों को बिना किसी श्रम नियोजन करतलगत किये हैं वे उनके उत्पादक नहीं थे। उसी साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि वे सभी साधन जो बिना श्रम नियोजन के उपलब्ध हुए हैं, यह विधि सम्मत सम्पत्ति नहीं है। व्यवस्था ही विधि है। यही विकास एवं जागृति का क्रम है। विकास क्रम में अपव्यय नहीं है। अपव्यय के अभाव में साधनों के सम्पत्तिकरण की उपयोगिता

एवं आवश्यकता सिद्ध नहीं होती है। तात्पर्य, साधनों के सम्पत्तिकरण की आवश्यकता तभी दृष्टव्य है जब मानव उत्पादन से अधिक उपभोग करने के लिए तत्पर हो। उत्पादन से अधिक उपभोग अमानवीयता के अतिरिक्त और कहीं किया जाना संभव नहीं है। अस्तु, अपव्ययता के लिये अत्याशा का होना, अत्याशा के लिये हीनता, दीनता, क्रूरता का होना देखा जाता है।

साधन व स्थान के सम्पत्तिकरण के अभाव में उपयोग-सदुपयोग उसकी वितरण व्यवस्था प्राथमिकतः सुलभ हो जाएगी जिससे प्रत्येक व्यक्ति के लिये साधन व स्थान का अभाव नहीं रहेगा। अपव्यय से रहित जीवन में अधिक स्थान, अधिक साधन स्वयं में पीड़ा दायक सिद्ध है। अधिक साधन अधिक स्थान को संग्रह करने के मूल में भय की पीड़ा एवं अपव्यय के आग्रह का अनिवार्य रूप में रहना पाया जाता है।

श्रम नियोजन, श्रम विनियम-पद्धति से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सेवा व वस्तु को दूसरी सेवा व वस्तु में परिवर्तित करने की सुगमता होती है, जिसमें शोषण, वंचना, प्रवंचना एवं स्तेय की संभावनाएं समाप्त हो जाती हैं जो अपराध परम्परा का वृहद् भाग है। ये संभावनाएं जागृति पूर्वक मानवकृत वातावरण, प्रधानतः व्यवस्था पद्धति एवं शिक्षा से ही निर्मित होती है।

उत्पादक या उत्पादन के लिये सहायक कोटि में ही प्रत्येक मानव गण्य है। उत्पादन क्षमताएं सामान्य, विशेष एवं विशिष्ट प्रभेद से गण्य है। उत्पादन के आधारभूत तथ्य शिक्षा, साधन, विनियम एवं संरक्षण है। यही व्यवस्था का स्पष्ट रूप है। उत्पादन की गति को द्रुतगामी बनाने के लिये तारतम्यतापूर्ण सुदृढ़ व्यवस्था की अनिवार्यता निरंतर है जिससे आवश्यकता से अधिक उत्पादन होना स्वभाव हो

जाता है।

अर्थ की सुरक्षा एवं सदुपयोग ही समाधान है। यही समाधानात्मक भौतिकवाद का प्रत्यक्ष रूप है। “सदुपयोग एवं सुरक्षा अनन्यशील है।” नियम समाधान में, से, के लिये है।

न्याय, अनुभव और व्यवहार में, से, के लिये है जो प्रसिद्ध है। यही व्यवहारात्मक जनवाद को स्पष्ट करता है। न्याय पाने की साम्य कामना ही व्यवहारात्मक जनवाद का आधार है, मानवीयता पूर्वक “नियम-त्रय” का पालन होना ही न्याय है, जिसका प्रत्यक्ष रूप आवश्यकता से अधिक उत्पादन और अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा है। यही जनाकांक्षा है। जनाकांक्षानुरूप व्यवहार-व्यवस्था-प्रक्रिया ही जनवादीय तंत्र का उद्देश्य है। तदनुरूप व्यवस्था व शिक्षा का सर्व-सुलभ होना ही व्यवहार है। जनवादीय तंत्र से जनवादीय व्यवस्था एवं शिक्षा, जनवादीय व्यवस्था शिक्षा से जनजाति में व्यवहार, जनजाति में व्यवहारानुरूप जनाकांक्षा का निर्माण होना ही जनवादीय तंत्र की सफलता है। जागृत मानव परम्परा में जनाकांक्षाएँ सार्थक होना पाया जाता है।

**न्याय पाना, सही कार्य व्यवहार करना एवं सत्य सम्पन्नता ही साम्यतः जनाकांक्षा है।**

जब तक न्याय के संदर्भ में जन-मन गत मतभेद हैं, तब तक व्यवहारात्मक जनवाद नहीं है। व्यवहारिकता के विपरीत में अव्यवहारिकता ही दृष्टव्य है। यही विषमता, मतभेद, द्रोह-विद्रोह, आतंक, भय, संचय, वर्ग-संघर्ष एवं युद्ध है या युद्ध के लिये तत्परता है। ये सब मानव के समाधान एवं समृद्धि के अवरोधक तत्व हैं। अन्याय एवं गलती के बिना समस्या एवं असमृद्धि का प्रसव नहीं है। इस प्रकार से मानव ही प्रतिभा एवं व्यक्तित्व के असंतुलनवश गलती

एवं अन्याय में प्रवृत्त होता है। फलतः मंगल कामना रहते हुए भी वह अमंगलकारी कर्म करता है। अमंगलकारी कर्म व्यवहार, विचार परम्परा सामाजिकता के लिये सहायक सिद्ध नहीं हुई है। यही सत्यता मानव को मंगलदायी कर्म, व्यवहार, विचार में अनुगमन एवं अनुशीलन करने के लिये प्रेरणा है। यही अभ्युदयशीलता के लिये उदय, मंगलमयता के लिये मार्ग, मांगलिकतापूर्ण जीवन-यात्रा एवं शुभ परम्परा की घटना है।

न्याय और समाधान सार्वभौम सत्य है। यह देश काल अबाध है। इसलिये मानव द्वारा किया गया संपूर्ण विचार एवं प्रयास तर्कसंगत या सतर्कतापूर्ण होने के लिये ही प्रत्येक मानव का समाधान एवं समृद्धि में, से, के लिये ही विचार, कर्म एवं व्यवहार करना प्रसिद्ध है। तर्क की सीमा में प्रतितर्क है। मूल वस्तु के अज्ञात व अस्पष्ट रहते हुए उसके तात्पर्य या फलवत्ता के संदर्भ में की गई प्रश्नोत्तर प्रक्रिया ही वाद-प्रतिवादी एवं तर्क-प्रतितर्क है, जो समस्या का समाधान नहीं है। समाधान एवं तात्विकता के लिये तर्क का प्रयुक्त होना ही उसकी चरितार्थता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि तर्क का अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है। साथ ही तर्क का प्रयोजन केवल तात्विकता से संबद्ध होना ही है। इसी प्रमाण-सिद्ध-साक्ष्य से स्पष्ट होता है कि तर्क सीमान्तवर्ती विचार, उपदेश एवं प्रचार मानव जीवन के लिये पर्याप्त नहीं है।

सतर्कता सहित समाधान, समाधान ही सार्वभौमता, सार्वभौमिकता ही निर्विषमता, निर्विषमता ही सत्यता, सत्यता ही यथार्थता, यथार्थता ही निर्भ्रमता, निर्भ्रमता ही अखण्डता, अखण्डता ही सफलता, सफलता ही सतर्कता है। सतर्कता-सजगता ही सफल सामाजिकता का लक्षण है। सामाजिकता शिष्टता सहित स्थापित

मूल्यों का निर्वाह है जो अनुभव मूलक प्रकटन है। यही अभय का स्पष्ट रूप है। ऐसे जीवन में ही स्वतंत्रता, स्वत्व एवं अधिकार का विधिवत् सदुपयोग होता है। सतर्कतापूर्ण जीवन में अपव्यय की संभावना नहीं है।

**सतर्कता-सजगता पूर्ण परंपरा में मानवीयता सहज चरितार्थता स्वभाव सिद्ध है।**

यही व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संतुलन जीवन-प्रतिष्ठा है। यही मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता का साकार रूप है, जिसका सामान्यीकरण ही मानव की दश सोपानीय व्यवस्था में सफलता एवं चरितार्थता है। व्यक्ति में सतर्कता-सजगता व्यक्तित्व के रूप में; परिवार में समाधान के रूप में; समाज में अखण्डता के रूप में; सार्वभौम व्यवस्था में निर्विषमता के रूप में; अंतर्राष्ट्र में सह-अस्तित्व के रूप में है जिसके लिये ही मानव में चिर पिपासा है।

वाद-त्रय संयुक्त कार्यक्रम ही अभ्युदय है। प्रत्येक व्यक्ति एवं संस्थाएँ दश सोपानीय व्यवस्था में अभ्युदयार्थ भागीदार होना जागृति हैं। साथ ही उन्हीं स्थितियों में वह में, से, के लिये दायित्व व कर्तव्य निर्वाह करना सहज है। संस्था ही व्यवस्था है, व्यवस्था ही प्रबुद्धता है, प्रबुद्धता ही विधि-नीति व पद्धति है, विधि-नीति व पद्धति ही संस्था है। संस्था की प्रथमावस्था परिवार सभा, द्वितीयावस्था परिवार समूह सभा, तृतीय ग्राम मोहल्ला परिवार सभा, चतुर्थ ग्राम मोहल्ला समूह परिवार सभा, पाँचवाँ क्षेत्र परिवार सभा, छठा मंडल परिवार सभा, सातवाँ मंडल समूह परिवार सभा, आठवाँ मुख्य राज्य परिवार सभा, नवाँ प्रधान राज्य परिवार सभा, दसवाँ विश्व परिवार राज्य परिवार सभा, यही अखण्ड समाज व्यवस्था की दश सोपानीय

व्यवस्था स्वरूप है। अखंडता ही समाज का प्रधान लक्षण है।

वर्ग वाद में अखंडता नहीं है। जब तक मानव जीवन में अखंडता नहीं है तब तक भय से मुक्ति नहीं है। जब तक भय से मुक्ति नहीं है तब तक स्वतंत्रता नहीं है, जब तक स्वतंत्रता नहीं है तब तक अपव्ययता का अभाव नहीं है।

संपूर्ण संग्राम-सामग्री, साधन-तंत्र, व्यवस्था मात्र अपव्यय में, से, के लिये ही है। जबकि प्रत्येक मानव प्रत्येक स्तर में अर्थ का सदुपयोग तथा सुरक्षा ही चाहता है। **यही चाहने और करने के बीच में जो दूरी है वही अंतर्द्वन्द्व, आत्म विश्वास का अभाव तथा स्वयं में स्वयं के विश्वास में सशंकता और भय का कारण है** यही पीड़ा है। अंतर्द्वन्द्व से मुक्ति के लिये प्रत्येक मानव को प्रत्येक स्तर में अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा हेतु मानवीयता में “नियमत्रय” का अनुगमन-अनुसरण एवं अनुशीलन करना ही होगा।

“सौजन्यतापूर्वक ही मानव अभयता से परिपूर्ण होता है” जिसमें अर्थ की सदुपयोगात्मक भावनायें परिपूर्णतः समाविष्ट रहती हैं। अर्थ का सदुपयोग होना ही सुरक्षा है। सौजन्यता सीमित नहीं है। यदि सीमित है तो सौजन्यता नहीं है। वर्ग-वाद या वर्गीय संस्थानुरूप अनुसरण में शिष्टता का पूर्ण विकास होना संभव नहीं है। क्योंकि जो व्यक्ति वर्गवाद से ओत-प्रोत रहता है वह उस वर्ग में अत्यंत सौजन्यतापूर्वक प्रस्तुत रहता है एवं अन्य वर्ग के साथ निष्ठुरतापूर्वक प्रस्तुत होता हुआ देखा जाता है। इस साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि वर्ग सीमा में मानव की शिष्टता परिपूर्ण नहीं है। अपरिपूर्णता वश ही स्वयं में, स्वयं का विश्वास नहीं हो पाता है। यही घटना प्रत्येक जन्म में पराभव का कारण होती है। इसे विभव की परम्परा में पाने के लिये मानवीयता ही एक मात्र शरण है।

**अभाव या भाव पुनः प्रयासोदय का स्तुषि है।** अभावता भाव के लिये, भाव पूर्णता के लिये, पराभवता विभव के लिये तृषित-व्यथित-आशित-आकाँक्षित है। यही पुनः प्रयास का कारण एवं अंकुर है। यही मूल प्रवृत्ति, संवेगपूर्वक प्रयासोद्घाटक के रूप में है। वर्ग और समुदायवादी संस्थाओं में एकाधिकारवाद, प्रभुतावाद, नायकवाद, अधिनायकवाद, बहु-नायकवाद, अल्पसम्मतिवाद, बहुसम्मतिवाद के आधार पर प्रयुक्त हुए हैं। ये सब सार्वभौमिकता के अभाववश ही पराभव को प्राप्त हुए हैं या असफल हुए हैं। इनका साक्ष्य समर प्रयास है। इसलिये सतर्कता-सजगता का स्पष्ट होना आवश्यक है।

**विनिमय कार्य जागृत मानव परम्परा में अनिवार्य प्रक्रिया है**

कम प्रदाय के बदले में अधिक वस्तु व सेवा को पाना लाभ है यही शोषण का प्रत्यक्ष रूप है। जबकि श्रम नियोजन का परिणाम ही उत्पादन है जिसमें उपयोगिता एवं सुन्दरता मूल्य सिद्ध होता है। श्रम नियोजन से ही समृद्धि होती है न कि लाभ से क्योंकि मुद्रा शोषण पर आधारित वाणिज्य में लाभ-हानि की संभावनाएं होती हैं। यह दोनों स्थिति उत्पादन या उत्पादन के लिये सहायक नहीं हैं। लाभ निर्मित पूंजी ही वस्तु विनिमय में असंतुलन का प्रधान कारण है। पूंजी अधिक लाभ से निर्मित होती है जो प्रत्यक्षतः शोषण है और यही अधिक लाभ के लिये नियोजित होती है।

**उत्पादन का सीधा संबंध विनिमय कार्य व स्वास्थ्य संयम कार्य, शिक्षा-संस्कार, न्याय-सुरक्षा, उत्पादन-कार्य एवं स्वास्थ्य-संरक्षण से हैं।** इन पाँचों की एकसूत्रता उत्पादन के लिये अनिवार्य है। यही व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम है। मूल्य विहीन

संबंध नहीं है। संबंध विहीन व्यवस्था एवं व्यवहार नहीं है। उत्पादन के संबंध निर्वाह में जो न्यूनताएं हैं वही लाभोत्पादक वाणिज्य के जन्म का कारण है। यह उस समय तक रहेगा जब तक उत्पादन संबंध का निर्वाह एकसूत्रतापूर्वक पूर्ण न हो जाय।

**विनिमय के अर्थ में वाणिज्य चरितार्थ होता है न कि सुविधा-संग्रह के अर्थ में।** विनिमय उत्पादन की सहायक प्रक्रिया है। संग्रहवादी वाणिज्य उत्पादन में सहायक सिद्ध नहीं हुआ है अपितु उत्पादन में अनेकानेक विधनों का निर्माण किया है। यही पद्धति उत्पादन में असंतुलन का कारण सिद्ध हुई है। इसका साक्ष्य उत्पादन में विमनता, उदासीनता है। साथ ही, संग्रह सुविधा प्रवृत्ति में विवशता भी है।

**उत्पादन का सुगमतापूर्वक वांछित वस्तु व सेवा में परिवर्तित होना ही विनिमय की चरितार्थता है।** लाभ मूलक वाणिज्य प्रक्रिया उसके विपरीत स्थिति का निर्माण करती है। यही सत्यता मानव को श्रम-विनिमय पद्धति को सर्वसुलभ बनाने के लिये प्रेरित है।

उत्पादन की भागीदारी के लिये श्रम नियोजन आवश्यक है। श्रम नियोजन पूर्वक ही मानव समृद्ध होता है। मानव में श्रम निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य के रूप में समझदारी होना ज्ञातव्य है जो चैतन्य क्रिया का अधिकार है। इसी अधिकारवश जड़-प्रकृति की यांत्रिकता में वह परिमार्जन और परिणाम प्रदान करता है फलतः उपयोगिता एवं सुन्दरता प्रत्यक्ष होती है। चैतन्य क्रिया की यही क्षमता परिवारगत आवश्यकता से अधिक उत्पादन एवं समृद्धि को प्रकट करती है। चैतन्य जीवन ही अमर है। शरीर का जन्म और मृत्यु घटना है। इस तथ्य को जानने वाला भी चैतन्य इकाई ही है। मानव में श्रम का मूल

रूप भी चैतन्य-क्रिया ही है। इस चैतन्य-क्रिया में जो संवेदनशील एवं संज्ञानशील क्षमता है, वही स्थापित मूल्यों का वहन, शिष्ट मूल्यों का प्रकटन और उत्पादित वस्तु मूल्यों का मूल्यांकन करता है और प्रमाणित होना पाया जाता है। सामाजिक जीवन में उत्पादन, उपयोग, सदुपयोग एवं विनिमय अविभाज्य अंग है। यही तथ्य जीवन में एकसूत्रता, तारतम्यता, अनन्यता और एकात्मकता को स्थापित करने के लिये प्रेरित करता है। यही स्थापना शुद्धतः व्यवस्था है।

उत्पादन को दूसरी वस्तु व सेवा में बदलने के लिये अपनाई गई सुगम पद्धति ही विनिमय है, जिसकी सफलता के लिये प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक आवश्यक वस्तु का सहज-सुलभ होने के लिये केन्द्रों का होना आवश्यक है। उत्पादन-कार्य जितना महत्वपूर्ण है उतना ही उसके सहायक तत्व संरक्षण भी महत्वपूर्ण हैं। संरक्षण के अभाव में सशंकतावश, साधनों के अभाव में उत्पादन सामग्रियों की असंपूर्णतावश, शिक्षा के अभाव में अक्षमतावश, विनिमय के अभाव में दूसरी वस्तु व सेवा में परिवर्तित करने के विधनवश उत्पादन में क्षति होती है। व्यवस्था का प्रत्यक्ष रूप में से उत्पादन एवं उसके सहायक तत्वों को सर्वसुलभ बनाना है। विधि का शुद्ध रूप ही सामाजिक मूल्यों यथा जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य व शिष्ट मूल्य का संरक्षण एवं संवर्धन है। ऐसी शुद्ध व्यवस्था के अंगभूत श्रम नियोजन एवं श्रम-विनिमय पद्धति द्वारा सफल होने की पूर्ण संभावना है क्योंकि प्रत्येक मानव शोषण के विरुद्ध है। प्रत्येक मानव न्याय का याचक है। प्रत्येक मानव सही करना चाहता है। प्रत्येक मानव भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान से संपन्न होना चाहता है। साथ ही प्रत्येक वस्तु में निश्चित श्रम नियोजन होता है। प्रत्येक वस्तु का किसी एक वस्तु की अपेक्षा में श्रम मूल्य निर्धारण उपयोगिता मूल्य के

आधार पर होता है। प्रत्येक वस्तु को प्रत्येक स्थान पर सर्वसुलभ बना देना सहज है।

राज्य संस्था समाज का ही प्रतिरूप है। राज्य संस्था की प्रक्रिया का जनाकाँक्षा के विरोध में प्रस्तुत होना ही संघर्ष या क्रांति का कारण होता है। जनाकाँक्षा सर्वदा ही न्याय की पक्षपाती रही है। प्रत्येक संस्था की भ्रमित विचार रूप में भी मंगल कामना रही है। जब वह प्रक्रिया, पद्धति, नीति व प्रणालीपूर्वक प्रस्तुत होती है तब जनाकाँक्षा व संस्था की परस्परता में जो अव्यवहारिकताएं रह जाती हैं, वही अप्रत्याशित घटनाओं के रूप में प्रकट होती हैं। यही परस्पर विश्वास के तिरोभाव के कारण होते हैं। फलतः विरोध का प्रार्थुभाव एक आवश्यकता बनती है। इसके दो विकल्प प्रसिद्ध हैं :-

1. राज्य संस्था का मूल रूपात्मक दर्शन जिसके आधार पर निर्धारित विधि व व्यवस्था का सुदृढ़ न होना अर्थात् मानवीयता पर आधारित न होना।

2. राज्य संस्था की कार्य-सीमा में पायी जाने वाली जन-जाति में संस्कृति-सभ्यता का आधार मानवीयतापूर्ण न होना।

संस्कृति एवं सभ्यता के संरक्षणार्थ ही विधि एवं व्यवस्था की स्थापना है। सभ्यता संस्कृति में, से, के लिये ही सामाजिकता है। सामाजिकता के लिये ही उत्पादन, वितरण, उपयोग व सदुपयोग होना आवश्यक है। इसी कारणवश विधि व व्यवस्था का ध्रुवीकरण एवं उसकी अक्षुण्णता सर्व स्वीकार्य है। यह मानवीयता पूर्वक सफल और अमानवीयता में असफल सिद्ध हुआ है।

**अर्थ संस्कृति में, संस्कृति सभ्यता में चरितार्थ होती है। अर्थ व्यवस्था से और सभ्यता विधि से सम्बद्ध है। यही सम्बद्धता**

उनकी अन्योन्याश्रयता को सिद्ध करती है। इसकी अक्षुण्णता मानवीयता में सफल और अमानवीयता में असफल सिद्ध हुई है। असफलता ही वर्ग-संघर्ष, समर, पराभव, भय और आतंक है।

**सामाजिकता औपचारिक तथ्य नहीं है अपितु जागृति पूर्वक जीने की शैली है।** वह केवल वास्तविकता पर आधारित क्रियाकलाप है। वास्तविकताएं ही नियति-क्रम, नियति क्रम ही विकास, विकास ही अभ्युदय, अभ्युदय ही व्यवहारिकता एवं व्यवहारिकता ही सामाजिकता है। व्यवहार संस्कृति, सभ्यता और विधि-व्यवस्था का योगफल है। मानव जीवन का आद्यान्त कार्यक्रम इसी चतुर्दिशा में वैभव है। विधि अनुभव को, संस्कृति विचार को, सभ्यता व्यवहार को, व्यवस्था उत्पादन विनिमय को स्पष्ट करती है। यह प्रमाण सिद्ध है। यही “मूल्य-त्रय” को प्रकट करता है।

मानव में विकसित अवस्था ही देव पद चक्र है। जिसके लिये मानव में सतत तृषा, अथक प्रयास एवं पूर्ण आकाँक्षा है। देव पद चक्र में संक्रमित होना ही मानवीयता सहज वैभव है। यही वैयक्तिक एवं परिवार स्थिति में आचरण एवं व्यवहार है। इसका व्यवस्था एवं शिक्षा के रूप में उपलब्ध हो जाना ही मानवीयतापूर्ण समाज का प्रत्यक्ष रूप है। यह संक्रमण-प्रक्रिया चेतना विकास मूल्य शिक्षा के क्रम में भावी है। अमानवीयता से मुक्ति पाने के लिये मानवीयता एक संभावना है। मानवीयता से परिपूर्ण होने के अनन्तर यह मानव का अधिकार और स्वत्व है। यही अधिकार एवं स्वत्व, स्वतंत्रता के लिये उत्प्रेरणा है। पूर्ण स्वतंत्रता दिव्य मानवीयता में ही होती है। देव पद चक्र में संक्रमित समाज ही जागृति सहज समाज है। इससे पूर्व की स्थिति में सामाजिकतापूर्ण समाज सिद्ध नहीं है, क्योंकि अमानवीयता में सामाजिकता का पूर्ण होना संभव नहीं है।



मानवीयतापूर्ण शिक्षा व व्यवस्था की प्रस्थापना, आप्त कामना सहित प्रमाण-पूर्वक विश्लेषणपूर्ण प्रक्रियाबद्ध सिद्धांतों का उद्घाटन है। यह अनुसंधान-क्षमता की स्वभाविक प्रक्रिया है। प्रत्येक जागृत इकाई में सबके जागृति के प्रति कामना होना स्वभाविक है। इसी क्रम में प्रत्येक अनुसंधान जन सुलभ होता आया है। जिनमें यह क्षमता प्रत्यक्ष हुई है, वे आप्तपुरुष हैं। मानवीयता में ही संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकरूपता सिद्ध होती है। अर्थात् निर्विषमता सिद्ध होती है। यही धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक एकात्मकता को सिद्ध करती है, जिसके लिये ही मानव कुल प्रतीक्षारत है। यही व्यक्ति में उत्पादन, व्यवहार, विचार एवं अनुभूति के लिये अविरत प्रेरणा का स्रोत है।

शिक्षा ही मानव जीवन एवं जीवन के कार्यक्रम को विश्लेषण व व्याख्यापूर्वक बोधगम्य कराने के लिये एकमात्र सूत्र है। प्रधानतः मानव को शिष्टता विशिष्टता से पूर्णतः प्रबोधन करा देना ही शिक्षा है। साथ ही उत्पादन-विनिमय कुशलता एवं निपुणता योग्य योग्यता का निर्माण करना ही शिक्षण की चरितार्थता है।

## 5

## आचरण पूर्णता ही शिक्षा का लक्ष्य है

जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति ही अध्ययन के लिये वस्तु व विषय सर्वस्व है। सत्ता में संपृक्त प्रकृति सहज ज्ञान एवं अनुभूति ही प्रसिद्ध है। यह ज्ञान मानव प्रकृति में भ्रम पर्यन्त संभव नहीं है। मानव प्रकृति में निर्भ्रमता, विकास एवं जागृति क्रम में पाई जाने वाली चारों अवस्थाओं, तीनों चक्रों एवं भ्रम मुक्ति पर्यन्त व्याख्या, विश्लेषण एवं प्रमाण है। यही दर्शन सर्वस्व है। दर्शन विहीन जीवन में गुणात्मक परिवर्तन सम्भव नहीं है। प्रत्येक मानव सुख के लिये ही प्रत्याशु है जन्म से ही मानव सत्यवक्ता, न्याय पाने का इच्छुक एवं सही कार्य व्यवहार करने का इच्छुक है।

दर्शक ही दृश्य का दृष्टि के द्वारा दर्शन करता है। दर्शक, दृश्य और दृष्टि क्रिया ही है। प्रत्येक क्रिया संवेदना एवं गति का संयुक्त रूप है, जो कम्पनात्मक एवं वर्तुलात्मक गति के रूप में दृष्टव्य है। कम्पनात्मक गति ही संवेदनशीलता है। यही स्पन्दनशीलता भी है। संवेदन विहीन चैतन्य क्रिया नहीं है। संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति चैतन्य प्रकृति में ही आरंभ होती है और दिव्य मानव परम्परा में ही संज्ञानशीलता सफल होता है। जबकि कम्पनात्मक गति जड़-प्रकृति में भी आंशिक रूप में पायी जाती है। जड़-प्रकृति में जो कम्पनात्मक गति है वह उसकी वर्तुलात्मक गति की अपेक्षा ऋणस्थ है। इसी कारणवश जड़-प्रकृति में वर्तुलात्मक गति प्रधानतः गणनीय

है। कम्पन विहीन इकाई नहीं है।

स्पन्दन ही अग्रिम विकास केलिये तृषा अभिव्यक्ति है। यही प्रत्येक अवस्था में स्वभाव है। **“स्वभाव परिवर्तन ही मूल्य परिवर्तन है।”** गुणात्मक मूल्य परिवर्तन ही विकास है। यही स्पंदनशीलता का क्रम है। कम्पनात्मक एवं वर्तुलात्मक गति का योगफल ही क्षमता है। क्षमता ही संस्कारपूर्वक स्वभाव में अभिव्यक्त होती है। अभिव्यक्ति की विविधता ही गुणात्मक परिवर्तन के लिए भी सहायक है। इसी क्रम में मानव न्यायप्रदायी धर्मीयता को प्रसारित करता है। यही अन्य मानवों पर स्थापित होने वाला प्रभाव है। स्थापित मूल्यों का शिष्ट मूल्यों सहित निर्वाह करने की क्षमता ही न्याय प्रदायी धर्मीयता का प्रसारण है जिसके लिये निपुणता, कुशलता और पांडित्य है।

**“अध्ययन की चरितार्थता आचरण में ही है।”** आचरण दश सोपानीय व्यवस्था में पाई जाने वाली अनिवार्य प्रक्रिया है। आचरण विहीन इकाई नहीं है। आकाँक्षा सहित गतिशीलता ही आचरण है। आचरण ही विकास व हास का प्रत्यक्ष बिन्दु है। जड़ और चैतन्य प्रकृति में भी आचरण का अभाव नहीं है। मानव जीवन के कार्यक्रम को अक्षुण्ण बनाने के लिए विचार श्रृंखला में सामाजिकता का अनुसंधान हुआ है। सामाजिकता की अक्षुण्णता केवल मानवीयता में सिद्ध होती है। सामाजिकता के लिये मानवीयता ही एक मात्र शरण है।

**“मानव द्वारा दश सोपानीय व्यवस्था में किये जाने वाले आचरणों में ही प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का प्रकटन होता है।”** प्रतिभा और व्यक्तित्व का संतुलन ही संतुलित-जीवन का प्रत्यक्ष रूप है। यही **“जाने हुए को मानना और माने हुए को**

जानना” है। यही अन्तर्द्वन्द्व से मुक्ति एवं भौतिक समृद्धि और बौद्धिक समाधान है, जो सब की आकाँक्षा है। यही गुणात्मक परिवर्तन का चरितार्थ स्वरूप है। विकास क्रम में गुणात्मक परिवर्तन भावी है, जो सहज प्रक्रिया है जिसमें वेदना का अत्याभाव है। यही जीवन का संगीत है। विकास एवं जागृति की प्रत्येक कड़ी सुखद होती है। विकास एवं जागृति के अतिरिक्त और कोई शरण नहीं हैं।

**“प्रबुद्धता ही प्रतिभा और आचरण ही व्यक्तित्व है।”**

आचरण एवं प्रतिभा-सम्पन्नता के लिये शिक्षा एवं उसके संरक्षण के लिये व्यवस्था प्रसिद्ध है। प्रतिभा ही ज्ञान और आचरण ही सभ्यता एवं संस्कृति की अभिव्यक्ति है। अभिप्रायपूर्वक किया गया प्रकटन ही अभिव्यक्ति है। अभ्युदयार्थ अनुभव मूलक विधि से की गई वैचारिक प्रक्रिया ही अभिप्राय है। विधि, व्यवस्था एवं संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में, सत्यानुभूति योग्य क्षमता के प्रति जिज्ञासा भी प्रतिभा का द्योतक है। अर्थतंत्र धर्म नीति एवं राज्यनीति व्यवस्था प्रसिद्ध है। व्यवस्था ही विकास एवं जागृति क्रम सहज प्रमाण है, प्रकृति स्वयं में व्यवस्था है।

**“स्वभाव-धर्म ही मौलिकता, मौलिकता ही इकाई का अर्थ, अर्थ ही सार्थकता है।”**

**“मौलिकता ही मूल्य है। उपयोगिता मूल्य, सुन्दरता मूल्य, शिष्ट एवं स्थापित मूल्य ही उद्घाटन एवं प्रकटन है।”** यही अभ्युदय का प्रत्यक्ष रूप है। मानव का निर्वाह अर्थात् उसका निश्चित दिशा व लक्ष्य की और विचार एवं व्यवहार पूर्वक वहन ही स्वभाव का प्रकटन है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अभ्युदयपूर्ण होना चाहता है।

समस्या मानव में वांछित उपलब्धि नहीं है। यही सत्यता,

समाधान के लिये प्रयास और अनुसंधान है। समाधान ही स्थिति है, यही विभव है। विभव ही वैभव है। वैभवपूर्ण होने के लिए मानव चिराशित है।

विधि, व्यवस्था, संस्कृति एवं सभ्यता के परिप्रेक्ष्य में निर्भ्रमता, सत्यानुभूति योग्य क्षमता के प्रति पूर्ण विश्वास, अनुभव सहित प्रमाणित होने की जिज्ञासा ही प्रतिभा-समुच्चय है जो निपुणता, कुशलता और पाण्डित्य है।

तन, मन, धन रूपी अर्थ के संबंध में ही व्यवस्था है। व्यवहार एवं व्यवहारिक शिष्टता के संबंध में विधि है, जो राज्यनीति व धर्मनीति पूर्वक जीवन में चरितार्थ होती है।

**मानव में स्वभाव और धर्म ही मौलिकता, मौलिकता ही मानव का अर्थ, अर्थ ही प्रकटन, प्रकटन ही स्वभाव है। मानव की मौलिकता ही मानव मूल्य है।** मूल्य-सिद्धि मूल्यांकन पूर्वक होती है। मूल्य चतुष्टय ही आद्यान्त प्रकटन है। यही अभ्युदय की समग्रता है। प्रत्येक व्यक्ति अभ्युदय पूर्ण होना चाहता है। अभ्युदयकारी कार्यक्रम से सम्पन्न होने में जो अंतर्विरोध है (चारों आयामों तथा पाँचों स्थितियों में परस्पर विरोध) वही संपूर्ण समस्याएँ हैं। इसके निराकरण का एकमात्र उपाय मानवीयतापूर्ण पद्धति से “नियम-त्रय” का पालन ही है। यही पाँचों स्थितियों का दायित्व है। अमानवीयतापूर्वक “नियम-त्रय” का पालन सम्भव नहीं है। अमानवीयता हीनता, दीनता और क्रूरता से मुक्त नहीं है। इसी कारणवश अपराध, प्रतिकार, द्रोह, विद्रोह, हिंसा-प्रतिहिंसा, भय-आतंक प्रसिद्ध है। ये सब मानव के लिये अवांछित घटनाएँ हैं। यही मानवीयतापूर्ण जीवन के लिये बाध्यता है।

**व्यवस्था-विधि, नीति और पद्धति का संयुक्त रूप है।**

अनुभव में विधि, व्यवहार में नीति और उत्पादन-विनियम में पद्धतियाँ प्रमाणित होती हैं। विशिष्ट ज्ञान ही विधि है जो स्थापित मूल्य एवं शिष्ट मूल्य को बोधगम्य एवं व्यवहारगम्य बनाती है। विशिष्ट बोध सत्ता में संपृक्त प्रकृति एवं उसके विकासक्रम, उसी के आनुषंगिक दर्शन एवं अनुभव योग्य क्षमता के संदर्भ में है। अनुभव-क्षमता ही समाज एवं सामाजिकता के संदर्भ में निर्विषमता तथा एकसूत्रता को स्थापित करती है। यही स्थापित मूल्य को अनुभवपूर्वक एवं शिष्ट मूल्य को व्यवहारपूर्वक सिद्ध करती है। यही विधि है।

नियति क्रमानुसरण-प्रक्रिया ही नीति है। नियति क्रम ही विकास एवं जागृति क्रम है। नियति क्रमानुसंगिक प्रगति ही गुणात्मक परिवर्तन है। प्रत्येक पद में, से, के लिये निश्चित अर्थवत्ता प्रसिद्ध है। नियतिक्रमवत्ता से सम्बद्ध उपयोगिता, उपादेयता और अनिवार्यता की सिद्धि तथा सिद्धिपूर्वक अग्रिम कार्यक्रम ही पद्धति है। यही गुणात्मक परिवर्तन परम्परा है। यह तब तक रहेगा जब तक आचरण पूर्ण न हो जावे। इसी पद्धति में आश्वासन एवं विश्वासन स्वभाव से सिद्धियाँ हैं।

**गुणात्मक परिवर्तन पद्धति स्वयं सिद्धांत, विकास एवं जागृति है।** हास मानव के लिये वांछित घटना नहीं है। समाज की अखंडता में, से, के लिये सार्वभौम व्यवस्था मानव परंपरा में एक अनिवार्य प्रक्रिया है।

व्यवस्था के मूल में सत्यतापूर्ण-प्रबुद्धता ही आधार है। प्रबुद्धता जागृतिपूर्वक सार्थक होता है। प्रबुद्धता का सामान्यीकरणार्थ ही व्यवस्था की अनिवार्यता है। व्यवस्था मानव में वांछित घटना है।

मानव जीवन की विधि एवं नीति-संहिता में असंदिग्धता ही शिक्षा में पूर्णता है। व्यवस्था की सफलता उसके कार्यक्षेत्र के अंतर्गत पाई जाने वाली जनजाति में तारतम्यता ही असंदिग्धता का प्रत्यक्ष

रूप है। विधि-संहिता ही मानव-जीवन-संहिता है। यही प्रकृति के विकासक्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति की भाषाकरण संहिता है। उसका अनुकरण, अनुसरण और आचरण-प्रक्रिया ही नीति है। यही मानव जीवन का कार्यक्रम है।

क्षेत्र और वर्ग सीमा पर आधारित विधि अर्थात् अपराध-संहिता और उसकी व्याख्या का सार्वभौम होना संभव नहीं है। इसी सत्यतावश सार्वभौम जीवनक्रम, जीवन के कार्यक्रम में संक्रमित होने के लिये आवश्यकता उत्पन्न हुई है।

सार्वभौम विधि-संहिता मानवीयतापूर्ण पद्धति से “नियमत्रय” का विश्लेषण है। दश सोपानीय व्यवस्था में जिसका पालन एवं व्यवहृत हो जाना ही उसकी चरितार्थता है। यही सर्वमानव की कामना है। नीति का आधार विधि है। नीति सम्मत वस्तु, पद्धति एवं प्रक्रिया ही लोकाकाँक्षा से सम्बद्ध होती है, होना ही है। नीति केवल दो ही है :-

प्रथम - धर्म नीति, द्वितीय - राज्य नीति।

ये दोनों नीतियाँ अर्थतंत्र सहित वैभव है। अर्थ तन, मन और धन के रूप में प्रमाणित हैं। मानव संतृप्त होने के लिए आश्वस्त, विश्वस्त होना चाहता है। अर्थ के सदुपयोग में विश्वास धर्म नीति एवं अर्थ की सुरक्षा में विश्वास राज्य नीति सहज सिद्ध होता है। अर्थ के उत्पादन, वितरण एवं उपयोग से ही सदुपयोग स्पष्ट होता है। सदुपयोगात्मक एवं सुरक्षात्मक नीति ही मानव की आकाँक्षा है। परिवार एवं वर्ग से मुक्त संस्था ही सार्वभौम संस्था है। ऐसी संस्था में मानव-जीवन, मध्यस्थ दर्शन सहित, स्वभावतः समाविष्ट रहती है। फलतः मानव-जीवन के कार्यक्रम का क्रियान्वयन होता है। दर्शन-

क्षमता के अनुरूप में कार्यक्रम का निर्धारण संस्थाओं ने किया है। असंदिग्ध कार्यक्रम केवल मानवीय संस्कृति, सभ्यता पर आधारित विधि व्यवस्था ही है। इसका प्रत्यक्ष रूप ही है व्यवहारिक “नियम-त्रय” का पालन। नियम त्रय का प्रत्यक्ष रूप ही शिष्ट मूल्यों सहित संपूर्ण स्थापित मूल्यों का निर्वाह है। यही अखंड समाज, सह-अस्तित्व, समाधान एवं समृद्धि है।

मानवीयता पूर्ण व्यवस्था अथवा सार्वभौमिक व्यवस्था के अर्थ में जनवादी तंत्र को दश सोपानीय विधि से निर्देश किया है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति-सभ्यता को प्रत्येक मानव जीवन में चरितार्थ करना चाहता है, जिसके लिये ही वह संस्था में स्वयं को समर्पित करता है।

**केवल साधनों की प्रचुरता मानवीयता को स्थापित करने में समर्थ नहीं है**

समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद, अनुभवात्मक अध्यात्मवाद का संयुक्त रूप ही सह-अस्तित्ववाद है। यही प्रत्येक स्थिति एवं प्रत्येक आचरण को अतिसंतृप्ति प्रदान करने के लिए सूत्र व्याख्या है। व्यवहारात्मक जनवाद के आधार पर व्यवहार-निर्वाह अर्थात् स्थापित मूल्यों का निर्वाह, शिष्ट मूल्य सहित प्रत्यक्ष होता है। स्थापित मूल्य, मानव मूल्य, जीवन मूल्य का अनुभव व मूल्यांकन होता है और शिष्ट मूल्य का आचरण होता है। उत्पादित वस्तु का उत्पादन, उपयोग एवं वितरण होता है।

बौद्धिक समाधान ही समाधानात्मक भौतिकवाद का आधार है। यही आधार स्वयं स्पष्ट करता है कि मानव के लिये समाधान एक प्रधान आयाम में, से, के लिये काँक्षित उपलब्धि है। चारों आयामों

की प्राथमिकता क्रमशः अनुभव, विचार, व्यवहार और उत्पादन है। अनुभव मूलक पद्धति से विचारों में समाधान, विचारानुरूप व्यवहार पद्धति से सह-अस्तित्व एवं न्याय-नियम-नियंत्रण-संतुलन समाधान मूलक उत्पादन से समृद्धि दृष्टव्य है।

**प्रत्येक मानव संपूर्ण मूल्यों सहित शिष्ट मूल्य सहित निर्वाह करने के पक्ष में है।** सम्बन्धों का निर्वाह न होना ही अव्यवहारिकता अर्थात् अमानवीय व्यवहार, उद्दण्डता, अराजकता एवं अस्थिरता है। यही व्यवहारात्मक जनवाद को उद्घाटित करने का प्रधान कारण है। स्वयं के समर्पण का तात्पर्य ही है निर्वाह करना। जितने भी परिप्रेक्ष्यों में निर्वाह-क्षमता प्रकट हुई है, ये सब समर्पण से प्राप्त गुणात्मक परिवर्तन के रूप में ही स्पष्ट हैं। समर्पण में पूर्ण स्वीकृति होती है। जो जिसे स्वीकार नहीं करता है, उनमें परस्पर समर्पित होना संभव नहीं है। जो जिसको स्वीकारता है, उसको वह आत्मसात कर लेता है या आत्मसात होता है, जो स्पष्ट है।

जन्म से ही मानव में संबंध का होना पाया जाता है। **संबंध विहीन जन्म, जीवन, मृत्यु नहीं है।** शरीर सहित जीवन संबंध में इससे अधिक घटना या अध्ययन नहीं है। मानव के जन्म-जीवन काल में ही समाज एवं सामाजिकता के अध्ययन की अनिवार्यता है। यही अनिवार्यता संबंधों के निर्वाह के लिए प्रेरणा है। यह जन्म से ही आरंभ होता है। जैसे :-

1. प्रत्येक माता-पिता अपनी संतानों का पोषण करते हैं, करना चाहते हैं।
2. प्रत्येक शिक्षार्थी शिक्षा पाना चाहता है।
3. प्रत्येक शिक्षक शिक्षा प्रदान करना चाहता है।

4. प्रत्येक व्यक्ति न्याय पाना चाहता है और सही कार्य-व्यवहार करना चाहता है।
5. प्रत्येक व्यक्ति परस्परता में कर्तव्य एवं दायित्व निर्वाह की अपेक्षा करता है और स्वीकारता है।
6. प्रत्येक व्यक्ति भौतिक समृद्धि और बौद्धिक समाधान चाहता है।

इसलिए **प्रत्येक स्थापित संबंधों में निहित स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही सामाजिकता का प्रत्यक्ष रूप है।** यही निर्विषमता सह-अस्तित्व का भी प्रत्यक्ष रूप है।

समाज संरचना शुद्धतः मानव परस्परता में स्थापित संबंध ही है। यही समाज की आद्यान्त संरचना है। संबंधों की अक्षुण्णता उसमें स्थापित मूल्य निर्वाह ही है। यही मानव जीवन सहज गरिमा है। स्थापित मूल्य अनुभूति है। मानव जीवन में अनुभव-क्षमता समान है। यही क्षमता मूल्यों का अनुभव करने के लिए होती है।

**समाज संरचना का आधार मानव मूल्य एवं स्थापित मूल्य ही है।** संबंधों से अधिक समाज संरचना नहीं है। मित्र संबंध में समस्त मानव-मात्र संबंधित हैं ही। अपराध विहीन समाज के लिए मानवीय शिक्षा एवं व्यवस्था पद्धति ही मूलतः कारक एवं आवश्यक है। मानवीय शिक्षा एवं व्यवस्था अन्योन्याश्रित उद्घाटन हैं। इनकी आधारभूत संहिता में मानव जीवन के अनुरूप जीवन के कार्यक्रम को पूर्णतया विश्लेषित करते तक अंतर्विरोध स्वभाविक है। मानवीय शिक्षा एवं व्यवस्था-संहिता का योगफल ही मानव-जीवन-संहिता है, जिसमें मानव की परिभाषा, मानवीयता की व्याख्या समायी हुई है। यही जीवन-संहिता की पूर्णता है। इसी के आधार पर निर्विषमता,

निर्विरोधित स्थापित होती है। ये जागृति पूर्वक प्रमाणपूर्वक पाई जाने वाली स्थिति है।

**प्रत्यक्ष रूप में स्थापित संबंध ही समाज संरचना है जिसके अनुभव में ही स्थापित मूल्य ज्ञातव्य हैं।** ये मूल्य शुद्धतः स्थिति ही हैं। स्थिति दर्शन अनुभूति हैं। संबंध विहीन इकाई नहीं हैं। प्रत्येक संबंध मूल्य सम्पन्न हैं। मानव परस्पर संबंधों में निहित सभी मूल्यों में से नौ स्थापित मूल्यों में से पूर्ण मूल्य प्रेम है, जो मानव संबंधों में इष्ट, मंगल एवं शुभ है। यही अनुभव है जिससे ही निर्विषमता, अनन्यता मानव जीवन में प्रकट होती है। यही सामाजिकता की आत्मा प्राण और त्राण है। प्रेरणा ही प्राण, आचरण ही त्राण है।

संबंध विहीन समाज नहीं है। समाज रचना संबंध में, से, के लिए ही है। संबंध मात्र समाज में, से, के लिए है। अतः समाज एवं संबंध अन्योन्याश्रित हैं। इसी तारतम्य में सभी मूल्य अन्योन्याश्रित हैं। फलतः अनन्यता सिद्ध है। यही सह-अस्तित्व का मूल सूत्र है। इसलिए

संबंध ही जन्म, शिक्षा, व्यवहार, परिवार, उत्पादन, व्यवस्था के प्रभेद से दृष्टव्य है। वह :-

1. जन्म संबंध :- माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन उनसे संबंधित सभी संबंध
2. शिक्षा संबंध :- गुरु-शिष्य।
3. व्यवहार संबंध :- मित्र, वरिष्ठ, कनिष्ठ (आयु के आधार पर)
4. उत्पादन प्रौद्योगिकी संबंध :- साथी-सहयोगी, स्वामी-सेवक, साधन-साधक, साध्य।
5. व्यवस्था संबंध :- दश सोपानीय परिवार सभा विधि।

6. परिवार संबंध :- परिवार संबंध में पति-पत्नि सहित सभी संबंध समाये रहते हैं।

प्रत्येक मानव, मानव के साथ व्यवहार करने के लिए उत्सुक है। जागृत मानव प्रधानतः मानव के साथ ही स्वयं की जागृति को प्रमाणित करता है। स्थापित संबंध में ही निर्वाह-क्षमता का उपार्जन कर लेना ही शिक्षित होने की उपलब्धि है। इसकी अनिवार्यता व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों में साम्यतः पायी जाती है। व्यवहार स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य एवं वस्तु मूल्य के योगफल में ही है। अनुभव ही मानव जीवन का प्रधान आयाम है। अन्य आयाम जैसे -विचार, व्यवहार एवं उत्पादन अनुभव क्षमता के बिना पूर्ण नहीं होती है। अनुभव-क्षमतावश ही मानव सामाजिकता के लिए उन्मुख होता है। क्योंकि :-

शीत-उष्ण; प्रकाश-अंधकार; प्रिय-हित, लाभ; न्याय, धर्म, सत्य; उचित-अनुचित; हानि-लाभ; उत्थान-पतन; हास-विकास का आंकलन प्रत्येक जागृत मानव में होता ही है। यही समीक्षा पूर्णता के लिए सहज निरंतरता के लिए प्रेरणा है।

अनुभव क्षमता के अभाव में मानव जीवन का विश्लेषण एवं उनके कार्यक्रम की स्थापना संभव नहीं हैं। मानव में स्थापना का तात्पर्य स्वीकृति से है। स्वीकृति ही संस्कार है। यही क्रम से मूल प्रवृत्ति एवं संवेग के रूप में अवतरित होकर क्रिया, व्यवहार, आचरण में प्रत्यक्ष होता है। अनुभव-क्षमता में ही भाव का निर्णय होता है। भाव ही उपलब्धि है। अभाव ही भाव में परिणत होने का शेष प्रयास है। प्रत्येक भाव मौलिक है। प्रत्येक मूल्य मानव और उसकी धर्मियता पूर्वक प्रतिष्ठित है। इकाई और उसकी मूल्यवत्ता का वियोग नहीं है। यही स्वभाव है। यही सत्यता प्रत्येक इकाई में उत्सव है। दिव्य

मानवीयता में आचरण/स्वभाव पूर्णता है। देव मानवीयता यशस्वी होता है। मानव मानवीयता पूर्वक सामाजिक होता है। यही जागृति में पायी जाने वाली वास्तविकता है। प्रत्येक मानव इकाई में पूर्णता की तृष्णा है। परिणाम का अमरत्व, श्रम का विश्राम, गति का गन्तव्य चैतन्य प्रकृति में जागृतिक्रम, जागृति दृष्टव्य है।

## 6

### विकास व जाग्रति ही वैभव क्रम है।

अपूर्णता ही तृष्णा, तृष्णा ही विकल्पापेक्षा, विकल्पापेक्षा ही सापेक्षता, सापेक्षता ही अपेक्षा, अपेक्षा ही गति, गति ही अग्रिम उदय, अग्रिम उदय ही परिणाम-परिवर्तन-परिमार्जन, परिणाम-परिवर्तन-परिमार्जन ही गठन क्रिया एवं आचरण पूर्णता है। यही जागृति क्रम और जागृति की आद्यान्त स्थिति है, जिसके संदर्भ में संपूर्ण अध्ययन है। यही दर्शन है।

**क्रमिकता ही नियति क्रम है।** नियंत्रणपूर्ण गति ही नियति है। क्रमिकता ही गुणात्मक विकास एवं जागृति की शृखंला है। गुणात्मक जागृति ही प्रकटन है। यही जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति की अभिव्यक्ति है। अभ्युदय को व्यक्त करना ही अभिव्यक्ति है। रूप, गुण, स्वभाव की वैविध्यता ही अनेक स्थितियों को स्पष्ट करती है। यही स्थितियाँ क्रम से गठन-क्रिया एवं आचरणपूर्णता को प्रकट करती हैं। यही त्रिसिद्धियाँ आद्यान्त प्रकृति में पायी जाने वाली उपलब्धियाँ हैं। दर्शन-क्षमता का उदय मानव में विशेषतः हुआ है। अशेष प्रकृति प्रकटन है। यही अध्ययन एवं उदय का कारण है। क्रिया में वैविध्यता का समापहरण ही सार्वभौमिकता है। यही मानवीयता का प्रत्यक्ष रूप है। मानव में व्यवहार एवं उत्पादन क्रियाएं प्रसिद्ध हैं। उत्पादन क्रियाओं की सार्वभौमिकता निपुणता एवं कुशलता से अर्थात् उपयोगिता मूल्य एवं सुन्दरता मूल्य के स्थापन करने की सामर्थ्य समानता से, व्यवहार क्रिया में सार्वभौमिकता पांडित्यपूर्ण

पद्धति से अर्थात् संबंधों में निहित मूल्यों के निर्वाह से है। यही संस्कृति एवं सभ्यता में सार्वभौमिकता का आधार है या यही सार्वभौमिकता है। सार्वभौमिकता ही विरोध की विजय है, विरोध की विजय ही सह-अस्तित्व है। इकाई की क्षमता में जागृति ही गुणात्मक परिमार्जन है। प्रत्येक मानव इकाई की क्षमता ही आचरण में अभिव्यक्त होती है। अमानवीयता से मानवीयता, मानवीयता से अतिमानवीय गुणात्मक परिवर्तन सिद्ध हुआ है। मानवीयता सहज क्रिया पूर्णता होती है। फलतः संस्कृति एवं सभ्यता में निर्विषमता एवं सतर्कता सहित सजगता पूर्ण होती है। अतिमानवीयता पूर्वक आचरण पूर्णता होती है, फलतः सजगता प्रमाण सिद्ध होती है।

**अपेक्षाकृत स्थितिवत्ता ही अनुमान का उदय है।** यही अध्ययन हेतु की गई उत्सुकता है। उदयविहीन स्थिति में अध्ययन एवं अध्ययन सिद्धि नहीं है। उदय ही कौतूहल है अर्थात् जानने, मानने, पहचानने, उपयोगिता, उपादेयता एवं अनिवार्यतापूर्वक अनुभव करने की क्रिया ही उत्कंठा है। तीव्र इच्छा का उत्कर्ष ही उत्कंठा है। यही मानव जीवन में क्रियाकलापों का आधार है। मानव-जीवन चार आयाम, दश सोपनीय परिवार सभा व्यवस्था एवं मूल्यों के निर्वाह के रूप में दृष्टव्य है जो संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम है।

प्रत्येक मानव शुद्धतः संघर्ष, विषमता, द्रोह-विद्रोह को नहीं चाहता है। यह सब भ्रमित मानव वातावरण के सम्पन्न होता हुआ पाया जाता है। यही सामाजिकता के लिए अड़चन है। अखण्ड समाज व्यवस्था के बिना मानव में मानव चेतना होना संभव नहीं है। मानव में विकास एवं जागृति के प्रति स्पष्ट ज्ञान, तदनुकूल आचरण, अनुसरण, संरक्षण, सहयोग व अध्ययन की न्यूनता ही सामाजिकता

की अपूर्णता है। यह मानव के लिए वांछित एवं आवश्यक घटना नहीं है।

**“निर्भ्रमतापूर्वक ही मानव चारों आयामों और दश सोपनीय परिवार सभा व्यवस्था में पूर्णता का अनुभव करता है।”** यह पूर्णता समाधान, समृद्धि, अभय एवं सह-अस्तित्व के रूप में प्रत्यक्ष होती है। पूर्णता मानव जीवन एवं प्रकृति की विकासक्रम एवं जीवन जागृति की संहिता है। जिसका सार्थक भाषाकरण ही संहिता है। यह सर्ववांछित उपलब्धि हैं। सार्वभौम सिद्धांत, नीति एवं पद्धति को पाना अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा के लिए अनिवार्यतम आवश्यकता है जिसके बिना शिक्षा में सार्वभौमिकता संभव नहीं है फलतः संस्कृति-सभ्यता में सार्वभौमिकता संभव नहीं है।

**“चारों आयामों की परितृप्ति ही सुख, शांति, संतोष एवं आनंद है।”** यही मानव की चिर आकांक्षा है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन अर्थात् समृद्धि में उत्पादन-विनिमय आयाम की परितृप्ति; शिष्टता सहित आचरण से व्यवहारिक आयाम परितृप्ति; निपुणता, कुशलता एवं पांडित्यपूर्ण समाधान से वैचारिक आयाम की तृप्ति; पूर्ण मूल्य एवं स्थिति सत्य में निरंतरता ही अनुभवात्मक आयाम की तृप्ति है।

पूर्णता को पूर्णतया स्वीकार करने योग्य क्षमता ही अनुभव क्षमता है। यह अनुक्रम से अर्थात् जागृति क्रम और जागृति से प्राप्त प्रकटन एवं स्थिति है। इस प्रकटन के अनन्तर परिवर्तन-परिमार्जन नहीं है। यही पूर्ण जागृति है। ऐसी पूर्णता केवल तीन ही है - गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता, आचरणपूर्णता।

पूर्ण स्वीकृति केवल स्थिति सत्य, वस्तु-स्थिति सत्य एवं



वस्तुगत सत्य के संदर्भ में, से, के लिए है। यही संचेतना का चरमोत्कर्ष एवं अन्तिम उपलब्धि नित्य मंगल सिद्धि है।

### कम्पनात्मक एवं वर्तुलात्मक गति का वियोग नहीं हैं।

प्रत्येक परमाणु में उभय गतियाँ प्रसिद्ध हैं। रासायनिक एवं भौतिक परिवर्तन सीमा पर्यन्त कम्पनात्मक गति की अपेक्षा में वर्तुलात्मक गति का अधिक रहना, रासायनिक सीमा से मुक्त गठनपूर्णता से सम्पन्न परमाणु में वर्तुलात्मक गति की अपेक्षा में कम्पनात्मक गति का विपुल होना पाया जाता है। कम्पनात्मक गति ही स्वागतभाव अर्थात् मूल्य संकेत ग्रहण एवं प्रसारण क्षमता एवं वर्तुलात्मक गति ही आस्वादन भाव को प्रकट करती है। रसों के आस्वादन की स्थिति रासायनिक क्रिया-प्रक्रिया सीमांतवर्ती है। चैतन्य प्रकृति कम्पनात्मक गति सहित स्वागतभाव पूर्वक ही मूल्यों का आस्वादन प्रवृत्ति व प्रमाण हैं। भावग्राही एवं भाव प्रदायी संकेतों का ग्रहण एवं प्रसारण करती है। इस संकेत ग्रहण-प्रसारण क्षमता में गुणात्मक परिवर्तन ही सुसंस्कार है। यही जागृति है, स्वभावात्मक महिमा है। वातावरणस्थ मौलिकताओं का संकेत ग्रहण एवं प्रसारण क्रिया कम्पनात्मक गति में ही होता है। यही प्रभावात्मक एवं प्रभावशील गति को प्रकट करता है।

**सामाजिकता के मूल में संज्ञानशीलता ही सक्रिय है।** जो कम्पनात्मक गति की महिमा है। महानता का विस्तार ही महिमा है। महानता ही जागृति सहज प्रमाण परम्परा है। अस्तित्व वर्तमान ही महानता का प्रधान लक्षण है। अस्तित्व में ही धर्मीयता का वर्तमान होना प्रसिद्ध है। मानव में धर्मीयता सुख है। जागृति पूर्णता ही महिमा सम्पन्नता है। मानव से अधिक महिमा सम्पन्न इकाई नहीं है। मानव ही जागृति पूर्वक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए शरीरान्तर भी देवात्मा एवं

दिव्यात्मा के पद में स्थित रहना होता है। सम्यकता अर्थात् पूर्णता के लिए जो जिज्ञासा है यही संचेतना है। सम्यकता केवल गठन, क्रिया एवं आचरण ही है। जिसका प्रत्यक्ष रूप ही अमरत्व, सतर्कता एवं सजगता है। सतर्कता की परिपूर्णता ही मानव में अभय एवं विश्वास, समृद्धि एकमात्र उपाय है। आशय पूर्ति के संदर्भ में समझदारी पूर्ण हो जाना ही अभयता है। अभयता ही सामाजिकता की आद्यान्त उपलब्धि है यही संज्ञानशीलता है।

### सर्वशुभ उदय का भास-आभास संवेदनशीलता की ही क्षमता है और प्रतीति व अनुभूति संज्ञानीयता की महिमा है

सर्वप्रथम सुख समाधान का भास-आभास संवेदनशीलता पूर्वक होता है। सुख, शान्ति, संतोष, आनन्द, न्याय, धर्म, सत्य, सहज प्रतीति, अनुभूति यह संज्ञानशीलता की गम्यस्थली है। यही पूर्ण जागृति है। वस्तु स्थिति के साथ आशा, विचार, इच्छा एवं संकल्प का उत्कर्षण (तीव्र इच्छा) एवं उज्ज्वलता का होना अनिवार्य है। उत्कर्षता का तात्पर्य गतिशीलता से, उज्ज्वलता का तात्पर्य निर्भ्रमता से है। अनुमान क्षमता ही प्रयोग-व्यवहार एवं अनुभव के लिए संभावना, अवसर तथा बाध्यता है।

**“जागृति सहज अनुमान क्षमता मानव की विशालता को और अनुभव ही पूर्णता को स्पष्ट करता है।”** सतर्कता एवं सजगता मानव-जीवन में प्रकट होने वाली क्रिया पूर्णताएं हैं। चैतन्य क्रिया अग्रिम रूप में क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता के लिये तृषित एवं जिज्ञासापूर्वक अपनी विशालता को अनुमान के रूप में प्रकट करती है। ज्ञानावस्था की इकाई का मूल लक्ष्य ही पूर्णता है। पूर्णता के बिना ज्ञानावस्था की इकाईयाँ आश्वस्त एवं विश्वस्त नहीं हैं। उत्पादन एवं व्यवहार में ही क्रमशः समाधान एवं अनुभव चरितार्थ

हुआ है। प्रयोग एवं उत्पादन में ही समस्या एवं समाधान है। व्यवहार एवं आचरण में ही सामाजिक मूल्यों का अनुभव होने का परिचय सिद्ध होता है। आशा, विचार, इच्छा समाधान के लिए ही प्रयोग व उत्पादन-विनिमयशील है। इच्छा एवं संकल्प अनुमानपूर्वक अनुभव के लिए आचरणशील है। आचरण के मूल में मूल्यों का होना पाया जाता है। स्वभाव ही आचरण में अभिव्यक्त होता है। मानवीय स्वभाव धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा ही है। अनुभव आत्मा में अनुभवमूलक व्यवहार एवं आचरण आत्मानुशासित होता है, आत्मानुभूति ही प्रमाण और वर्तमान है। आत्मानुभूति मूलक व्यवहार समाधान सम्पन्न होता है। तभी परावर्तन एवं प्रत्यावर्तन में संतुलन सिद्ध होता है। अनुभूति आत्मानुषंगी एवं अपरिवर्तनीय है। पूर्णता सहज व्यवहार आत्मानुषंगी एवं अपरिवर्तनीय है यही पूर्णता है। यही पूर्ण सजगता है, पूर्ण सजगता ही सहजता है। समाधान एवं अनुभूति की निरंतरता ही सामाजिक अखण्डता एवं अक्षुण्णता है। अनुभव एवं समाधान के बिना जीवन चरितार्थ नहीं है। चरित्रपूर्वक अर्थ निस्सरण ही चरितार्थता है। आचरण ही स्वभाव के रूप में प्रकट होता है। यही स्वभाव “तात्रय” में स्पष्ट है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन के रूप में प्रयोग पूर्वक किया गया उत्पादन-विनिमय में सफल हुआ है। व्यवहार एवं उत्पादन का योगफल ही सह-अस्तित्व है। उनमें निर्विषमता ही जागृति है। उसकी निरंतरता ही सामाजिकता की अक्षुण्णता है, जिसके दायित्व का निर्वहन शिक्षा एवं व्यवस्था करती है।

“परिमाण विश्लेषण-पूर्वक सिद्ध होता है जो नियति सहज निर्णय है। यह निर्णय ही समाधान है। परिमाणता, फल, प्रभाव, दबाव, तरंग, वस्तु, दूरी, विस्तार, काल एवं क्रिया के रूप में गण्य होता है।” ये सब प्रयोजन एवं आवश्यकता के आधार पर उपयोगी-

पूरक सिद्ध हुए हैं। जागृत मानव की उपयोगिता या व्यवहारिकता सहज मानसिकता ही मूल्य है। उपयोगिता एवं व्यवहारिकता अन्योन्याश्रित तथ्य हैं। व्यावहारिक न हो उपयोगी हो यह असामाजिकता का द्योतक है। व्यवहारिक हो उपयोगी न हो यह निषेध का तात्पर्य है। व्यवहारिकता स्थापित मूल्य एवं शिष्ट मूल्य पूर्वक सिद्ध होती है। वस्तु मूल्य केवल उपयोगिता एवं सुन्दरता मूल्य में सीमान्तवर्ती है। सुंदर हो, व्यवहारिक न हो, अर्थात् सामाजिकता के लिए उपयोगी न हो यह निषेध है।

परिचय ज्ञान, व्यवहार एवं आचरणपूर्वक सिद्धि के लिए की गई प्रक्रिया ही परिमाण-प्रक्रिया है। मानव में पूर्णता केवल क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता है। परिणाम-निर्णय-प्रक्रिया में कारण, गुण, गणित ही आद्यान्त आधार है। यही निर्णायक तथ्यत्रय है। कारण सहित घटनाएं, गुण सहित प्रक्रियाएं एवं मात्रा की गणनाएं प्रसिद्ध हैं। शुद्धतः परिमाण का परिणाम परमाणु की स्थिति में होता है। “रूप, गुण, स्वभाव व धर्म का संयुक्त रूप ही मात्रा है।” प्रत्येक इकाई में स्वभाव गति एवं आवेशित गति दृष्टव्य है। हास के योग्य गति आवेशित गति है। आवेशित गति ही सापेक्ष शक्तियों के रूप में दृष्टव्य है। जो जड़ प्रकृति में विद्युत, ताप, प्रकाश, चुम्बक और शब्द के रूप में, चैतन्य प्रकृति में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मात्सर्य के रूप में स्पष्ट है।

मानव में पायी जाने वाली स्वतंत्रता की तृषा का तृप्त हो जाना ही मानव-जीवन में दृष्टा पद एवं जागृति है। मानव जीवन भी जागृति क्रम है। स्वतंत्रता का प्रत्यक्ष रूप ही सतर्कता एवं सजगता है जो मानवीयतापूर्ण समाज, सामाजिकता, आचरण, संस्कृति, विधि, व्यवस्था एवं शिक्षा है। ये सभी परस्पर पूरक तथ्य हैं। इन सभी पूरक

तथ्यों का एक ही सुदृढ़ आधार है मानवीयता। मानवीयतापूर्ण जीवन में ही मानव के विचार, व्यवहार एवं अनुभूति में एकात्मकता सिद्ध होता है। अनुभूति के विपरीत विचार, व्यवहार एवं उत्पादन होना ही अनेकता है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन पूर्वक वस्तु विनिमय एवं व्यवस्था, शिष्ट मूल्य पूर्वक निर्वाह करने वाले व्यवहार एवं विधि, कुशलता, निपुणता एवं पांडित्य-पूर्ण विचार तथा मूल्यत्रय के अनुभव की निरंतरता से जीवन चरितार्थ होता है। यही जीवन में समाधान है। यही मानवीयता पूर्ण जीवन जागृति सहज प्रमाण है। समस्या मानव का अभीष्ट नहीं है या उपलब्धि नहीं है। समाधान ही मानव का आद्यान्त इष्ट, अभीष्ट एवं उपलब्धि है। यह केवल चारों आयामों, दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था एकसूत्रता है, जिसके लिए अनवरत अभ्यास है।

**“सतर्कता एवं सजगता पर्यन्त उदय का क्रम है अर्थात् अनुमान का अभाव नहीं है।”** अनुमान ही अनुगमन, आचरण, अनुसंधान, प्रयोग, उत्पादन एवं व्यवहार की प्रवृत्ति है। अनुमान ही अग्रिम गति का प्रेरणा स्रोत है। अनुक्रम पूर्वक प्रमाणित करने के लिए प्रयासोदय ही अनुमान है। आनुषंगिक क्रम ही अनुक्रम है। आनुषंगिक क्रम सुदूर इतिहास से सम्बद्ध व विकास एवं जागृति से सम्बद्ध पाया जाता है। इसलिये प्रत्येक प्रमाणीकरण जागृति श्रृंखला में ही सिद्ध होता है ऐसी प्रमाणिकता “प्रमाण-त्रय” के रूप में मानव जीवन में चरितार्थ होती है। विकासक्रम व जागृतिक्रम ही आद्यान्त क्रम है। जागृतिपूर्णता तक अनुगमन के अनन्तर पुनः अनुगमन के लिए उदय अनुस्यूत होना पाया जाता है। यही उदय के अनन्तर उदय ही जागृति सहज गरिमा महिमा एवं सिद्धि है।

अखण्ड सामाजिकता का उदय होना ही अध्ययन में पूर्णता,

व्यवस्था पद्धति में दृढ़ता, व्यक्ति में आचरण, समाज में पूर्णता एवं अभयता है। यही सर्वमंगल कार्यक्रम एवं शुभ है।

**मानव में संचेतनशीलता ही संस्कार एवं जागृति सम्पन्नता ही आधार एवं प्रमाण है।**

यही व्यक्तित्व एवं प्रतिभा को प्रकट करती है। सतर्कता ही प्रतिभा और सजगता ही व्यक्तित्व का प्रधान परिचय है, जिसके लिए निपुणता-कुशलता एवं पांडित्य है। यही प्रतिभा के रूप में प्रमाण सिद्ध होता है। “ता-त्रय” में किए जाने वाले आहार, विहार एवं व्यवहार के रूप में व्यक्तित्व प्रमाणित होता है। प्रतिभा में से निपुणता, कुशलता का परिचय उत्पादन में, व्यक्तित्व का परिचय व्यवहार में स्पष्ट होता है। तन, मन, धनात्मक अर्थ के सदुपयोग की सजगता उसके संरक्षण में सतर्कता है।

सतर्कता-सजगता प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का संयुक्त रूप ही मानव-जीवन है। यही प्रत्येक व्यक्ति में क्षमता, योग्यता और पात्रता के रूप में दृष्टव्य है, जो वहन, प्रकटन एवं ग्रहण-क्रिया है। प्रतिभा के नियोजन में उपयोगिता एवं कला सिद्ध होती है। यही सतर्कता है। यही व्यवहार-विषमता का उन्मूलन करती है। फलतः अभयता सिद्ध होती है। आचरण में ही सजगता सिद्ध होती है, जो अर्थ के सदुपयोग के रूप में स्पष्ट होती है। यही सह-अस्तित्व को सिद्ध करती है।

**“जागृत संचेतना ही प्रतिभा, प्रतिभा ही सतर्कता एवं सजगता, सतर्कता एवं सजगता ही जीवन, जीवन ही जागृति, जागृति ही व्यक्तित्व, व्यक्तित्व ही आचरण, आचरण ही संचेतना है।”** जागृत जीवन और शरीर के तन्त्र में स्पन्दन ही कम्पनात्मक गति, कम्पनात्मक गति ही संचेतना, संचेतना ही कम्पनात्मक गति है। यही चैतन्य क्रिया की महिमा, गरिमा एवं

विशेषता है। मानव-जीवन में अभिव्यक्त होने वाले संपूर्ण आचरण “तात्रय” में दृष्टव्य है। प्रतिभा ही उत्पादन-विनिमय एवं व्यवहार में प्रकट होती है। यही उत्पादन में उपयोगिता एवं कला मूल्य का मूल्यांकन एवं प्रस्थापन तथा व्यवहार में स्थापित मूल्य एवं शिष्ट मूल्य का निर्वाह है। यही विचार में समाधान, अस्तित्व में अनुभूति है।

**“दर्शन-क्षमता ही प्रतिभा, प्रतिभा ही उत्पादन-विनिमय एवं व्यवहार के लिए प्रवृत्ति है।”** आचरण ही मानव की अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति ही प्रकटन, प्रकटन ही जागृति पूर्वक अस्तित्वशीलता, विकास एवं जागृति अस्तित्वशीलता ही प्रकृति, प्रकृति ही जड़-चैतन्य क्रिया, जड़-चैतन्य क्रिया ही समग्र, समग्र ही अध्ययन, अध्ययन ही जागृति-क्षमता एवं जागृति -क्षमता ही दर्शन-क्षमता है।

**“ज्ञानावस्था की चैतन्य इकाई में प्रधान लक्षण दर्शन-क्षमता ही है।”** मानव की मूल क्षमता या स्वत्व यही है। यही क्षमता “तात्रय” को स्पष्ट करती है। यही स्व-पर मौलिकता की स्वीकृति ही संस्कार, संस्कार ही निश्चय, निश्चय ही संकल्प, संकल्प ही अनुगमन एवं अनुसरण, अनुगमन एवं अनुसरण ही अनुसंधान एवं संधान, अनुसंधान एवं संधान ही व्यवहार एवं उत्पादन, व्यवहार एवं समृद्धि ही अनुभूति व समाधान, अनुभूति व समाधान ही जीवन, जीवन ही अस्तित्व एवं परमानंद, अस्तित्व एवं परमानंद ही सतर्कता एवं सजगता, सतर्कता एवं सजगता ही पूर्ण जागृति, पूर्ण जागृति ही दर्शन-क्षमता की परमावधि है।

**“मानव इस सृष्टि में सर्वोच्च विकसित इकाई है। यह कम विकसित का भी दर्शक, समान में सह-अस्तित्वशील, अधिक विकास के लिए अभ्यासशील, पूर्णता के लिए जिज्ञासु**

**है।”**

प्रकृति का अध्ययन एवं दर्शन तथा मूल्यों का अनुभव प्रसिद्ध है। अनुभव क्षमता ही मूल्य एवं मूल्यांकन का निष्कर्ष है। स्थिति मूल्य या मूल्यांकन ही अनुभव है। अनुभव विहीन मानव अपने में स्पष्ट नहीं होता है। प्रत्येक मानव स्पष्ट होने में, से, के लिए निरंतर प्रयासशील है। स्वयं स्पष्ट होना ही समाधान एवं अनुभव पूर्ण प्रकटन है। तत्पर्यन्त मानव संतृप्त नहीं है। सम्यक प्रकार से तृप्ति ही संतृप्ति है। सम्यक प्रकार से तुष्टि ही संतुष्टि है। संतुष्टि का तात्पर्य पूर्णता से है। आद्यान्त प्रकृति में पूर्णता की स्थिति तीन ही है। वह गठन, क्रिया और आचरण ही है जो प्रमाण सिद्ध है। पूर्णता-त्रय-सम्पन्नता ही जीवन में पूर्णता है जो प्रमाण सिद्ध है जो सजगता, सतर्कता एवं अमरत्व है। यही समाधान व प्रतिभा का चरमोत्कर्ष है। यही सह-अस्तित्व, समृद्धि, स्वर्ग, मंगल, शुभ है। यही अभ्युदय है, जिसके लिए मानव अनादि काल से तृषित है। इसे सर्व-सुलभ बनाना ही मानवीय शिक्षा एवं व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम एवं सफलता है।

**“सजगता एवं सतर्कता का प्रकटन अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा के ही रूप में भी दृष्टव्य है।”** तन-मन-धन की सुरक्षा एवं सदुपयोग प्रसिद्ध है। इन तीनों क्रम से धन से तन, तन से मन वरीय है। मन आश्रित तन, मन एवं तन आश्रित धन प्रसिद्ध है। मानसिकता के अनुरूप ही शरीर संचालन और कार्य-व्यवहार प्रवृत्ति अर्थ का उपार्जन एवं उपयोग प्रसिद्ध है। मन का तात्पर्य ही विचार से है। संपूर्ण विचार निपुणता-कुशलता और पांडित्य ही है। विचार के अभाव में मानव शरीर द्वारा क्रियाकलापों को सम्पादित करने में समर्थ नहीं है। यही संचेतनशीलता है। सुरक्षा एवं सदुपयोग-क्षमता सम्पन्न होने के लिए ही दर्शन एवं सह-अस्तित्व-चिंतन है।

सामाजिकता का अनुसरण-आचरण तब तक संभव नहीं है जब तक मानवीयतापूर्ण जीवन सर्वसुलभ न हो जाय। ऐसी सर्वसुलभता के लिए शिक्षा और व्यवस्था ही एकमात्र दायी है, जिसके लिये मानव अनादिकाल से प्रयासशील है। प्रत्येक मानव को सतर्कता एवं सजगता से परिपूर्ण होने का अवसर है, जिसको सफल बनाने का दायित्व शिक्षा एवं व्यवस्था का ही है। सफलता और अवसर का स्पष्ट विश्लेषण ही शिक्षा है। प्रत्येक मानव सही करना चाहता है और न्याय पाना चाहता है साथ ही सत्यवक्ता है। ये तीनों यथार्थ प्रत्येक मानव में जन्म से ही स्पष्ट होते हैं। यही अवसर का तात्पर्य है। इन तीनों के योगफल में भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान की कामना स्पष्ट है। यह भी एक अवसर है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए अवसर का सुलभ हो जाना ही व्यवस्था की गरिमा है। न्याय प्रदान करने की क्षमता एवं सही करने की योग्यता की स्थापना ही शिक्षा की महिमा है।

**“संचेतनशीलता का पूर्ण उपयोग समाज में व्यवहार और व्यक्ति में अनुभूति है।”** अनुभव विहीन आचरण पूर्ण नहीं है। सामाजिक मूल्यानुभूति ही अखंडता का और वस्तु मूल्यानुभूति ही समृद्धि का द्योतक है। वस्तु मूल्यानुभूति के बिना उसका उत्पादन संभव नहीं है। धर्मीयता का अनुभव हो जाना ही मूल्यानुभूति है। वस्तु मूल्यानुभूति ही उत्पादन, समृद्धि में सफलता है। यही आवश्यकता से अधिक उत्पादन की क्षमता है। मूल्यानुभूति में असमर्थता ही उत्पादन में अपूर्णता, सदुपयोग में अक्षमता एवं सुरक्षा में असमर्थता है। परिणामतः दरिद्रता एवं असामाजिकता है। व्यवहार मूल्य के अनुभव में जो अक्षमता है वही संदिग्धता, सशंकता, अविश्वास एवं भय है। फलतः मानव में आतंक, युद्ध एवं सह-अस्तित्व है। इससे स्पष्ट होता है कि असामाजिकता के मूल में व्यवहार एवं व्यवसाय

मूल्य का अनुभव करने की अक्षमता है। यही आंकलन मानव को मूल्यानुभूति के लिये प्रवर्तित करता है। मूल्यानुभूति ही सामाजिक अखंडता है, जिसमें संस्कृति-सभ्यता एवं विधि-व्यवस्था की एकरूपता पायी जाती है। यही मानवीयता का साकार रूप है, जो मानव के लिए चिर प्रतीक्षित तथ्य है। यही सर्वमंगल, शुभ एवं वांछित घटना है।

### **सामाजिकता का आधार संस्कृति एवं सभ्यता ही है।**

उपलब्धि सह-अस्तित्व एवं समृद्धि है। पूर्णता को प्रमाणित करने की प्रक्रिया श्रृंखला ही संस्कृति है, जिसका आचरण ही सभ्यता है। मानव जीवन में पूर्णता का प्रमाण केवल सह-अस्तित्व ही है, जिसकी व्यवहारिक सुगमता के लिए समृद्धि की आवश्यकता होती है जो महत्वाकांक्षा एवं सामान्य आकांक्षा के अंतर्गत सीमित हैं। संस्कृति के मूल रूप विचार ही है। ये विचार “ता-त्रय” मानवीयता, देवमानवीयता व दिव्य मानवीयता के अर्थ में है। अमानवीय परम्परा सामाजिक नहीं है। असामाजिक आहार, विहार, व्यवहार, जाति, धर्म, भाषा, उत्पादन, उपभोग, वितरण ये सब सह-अस्तित्व को सिद्ध करने में समर्थ सिद्ध नहीं हुए हैं। सह-अस्तित्व के बिना अखण्ड समाज एवं सामाजिकता नहीं है। उत्पादन परंपरा भी सामाजिकता के लिए है।

**“संस्कृति का शुद्ध रूप संस्कार सम्पन्न होने की परम्परा है।”** यही पूर्ण शिक्षा है। मानव में संस्कार गुणात्मक परिवर्तन क्रिया परम्परा है। गुणात्मक परिवर्तन जागृति अनुक्रम-अनुगमन या अनुसरण है। मानव की जागृति अमानवीयता से मानवीयता में, मानवीयता से अतिमानवीयता में स्पष्ट है। क्रम ही परम्परा है।

परम्परा किसी लक्ष्य को पाने के लिये किया गया प्रयास है। मानव व्यवहार परम्परा का मूल लक्ष्य सुख, शांति, संतोष एवं आनन्द ही है। इसका व्यवहार प्रमाण ही अभय, सह-अस्तित्व, समाधान, समृद्धि है। यही अभयता है, जो समाज की मूल धारणा है। मूल धारणा को पाने के लिये अथवा सफल बनाने के लिये प्रक्रिया प्रभावशील होती है। मानवीयतापूर्ण प्रक्रिया ही लक्ष्य सफलता के लिये एकमात्र शरण है।

संस्कृति पराम्परागत उद्बोधन, प्रयोजन, प्रोत्साहन, संरक्षण, संवर्धन, परिपालन प्रक्रिया सहित चेतना विकास मूल्य शिक्षा है जो अनुभव प्रमाण परंपरा है। यही शिक्षा सर्वस्व है। संस्कार पूर्वक ही प्रवृत्तियों का उदय होता है। प्रत्येक प्रवृत्ति संवेग के रूप में अवतरित होकर क्रियाशील होती है। यही स्वभाव में गण्य होता है। स्वभाव “ता-त्रय” की सीमा में गण्य होता है। इसलिये

**“वर्गविहीन मानवीयतापूर्ण समाज में संघर्ष का अत्याभाव होता है।”** जागृति और संगठनपूर्वक ही समाज-चेतना परंपरा उदय होता है। संगठन के मूल में पूर्णता की धारणा एवं अध्ययन होता है। यही अभयता है।

परम्परा की स्वीकृति ही प्रतिबद्धता है। मानवीयतापूर्ण परम्परा ही सामाजिक एवं स्वस्थ परम्परा होती है। वर्गीय एवं परिवारीय व व्यक्तिवादी परंपरा संघर्ष से मुक्त नहीं है फलतः सामाजिक नहीं है। सामाजिकता सीमा नहीं अपितु अखंडता है। प्रतिबद्धताएं संकल्प पूर्ण प्रवृत्तियों के रूप में प्रकट होती है जो उनके आहार, विहार, आचरण, व्यवहार, उत्पादन, उपभोग, वितरण और दायित्व, कर्तव्य, निर्वाह के रूप में प्रत्यक्ष होती है। संकल्प में परिवर्तित होना ना होना ही अवधारणा है। ऐसी अवधारणा भास, आभास पूर्वक ही होती है

जबकि धारणा संक्रमण ज्ञानपूर्वक स्वीकृति है। जिसे शिक्षा ही स्थापित करती है। प्रथम शिक्षा माता-पिता, द्वितीय शिक्षा परिवार, तृतीय शिक्षा केन्द्र, चतुर्थ शिक्षा व्यवस्था सहज वातावरण है जिसमें प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन प्रक्रिया भी हैं। यही शिक्षा मानव में अवधारणा स्थापित करती है। फलतः मानव “ता-त्रय” के रूप में अपने आचरण को प्रस्तुत करता है। यही मानवीयता, देव मानवीयता, दिव्य मानवीयता है।

अवधारणा का स्थापन कार्य जागृत परिवार में जन्म से ही आरम्भ होता है, जागृत मानव परम्परा रूप में युवा -अवस्था तक में दृढ़ हो जाता है, प्रौढावस्था में अवधारणा प्रमाण पुष्टि होता है। जबकि शैशव व बाल्यावस्था में अवधारणाएं सुलभतः स्थापित होती है। ऐसे समय से ही मानवीयतापूर्ण संस्कृति की स्थापना तदनुरूप शिक्षा से दश सोपानीय व्यवस्था में एकरूपता को पा लेना ही अखंडता की प्रत्यक्ष उपलब्धि है।

मानवीयता पूर्ण परम्परा के मूल में मंगल कामना समायी रहती है। ऐसी उदात्त मंगल कामना व्यवहारानुगमन में सार्थक होता है।

**अवधारणा ही संस्कार है।** संस्कार विहीन मानव नहीं हैं। संस्कार प्रदाता केवल अस्तित्व दर्शन मानवीयता पूर्ण आचरण जीवन ज्ञान को प्रबोधित करने वाली शिक्षा ही है। इस शिक्षा एवं शिक्षण समुच्चय को मानवीयता से परिपूर्ण किया जाना ही अखंडता की स्थापना है। यही क्रम अखंड सामाजिकता की अक्षुण्णता है। यही सर्वमंगल शुभ धर्म की सफलता है।

**मानव में वर्गविहीनता न्याय अपेक्षा, सही करने की इच्छा एवं सत्यवक्ता होना जन्म से ही दृष्टव्य है।**

जन्म के अनन्तर वर्ग जाति, मत, सम्प्रदाय का आरोपण होता

है। शुद्धतः प्रत्येक संतान केवल मानव संतान है। इसमें मानव से अतिरिक्त जाति, मत, संप्रदाय, वर्ग-बोध को उनके माता-पिता परिवार तथा प्रतिबद्ध समूह प्रस्थापित करते हैं जो एक पारम्परिक प्रक्रिया है। वह वर्ग सीमा से अधिक नहीं हैं। शैशवावस्था से ही तदाकार वृत्ति होती है। फलतः विभिन्न जाति, मत, सम्प्रदाय, धर्म, वर्ग को स्वीकारता है। उसी सीमा में स्व-अस्तित्व मान्यता वश उस वर्ग के सीमावर्ती कार्यकलाप, आचरण, व्यवहार में प्रवृत्त होने के लिए बाध्य करता है। यह बाध्यताएं तब तक रहेंगी जब तक किसी विशेष घटनावश उसमें विशिष्ट परिवर्तन न हो जाये। विशिष्टता का तात्पर्य मानवीयता एवं अतिमानवीयता पूर्ण जीवन में स्थिति को पालने से है। ऐसा व्यक्ति जिस परम्परा से उद्गमित हुआ रहता है उसी परम्परा में उसकी विशिष्टता एवं शिष्टता का समावेश करने के लिए प्रयास करता है। पहले से ही वह परम्परा किसी सीमा से सीमित रहने के कारण अनुभवमूलक तत्वों का समावेश करने में असमर्थ होकर उस व्यक्ति या व्यक्तित्व को एक आर्दश के रूप में वह परम्परावादी जनजाति स्वीकारता है। फलतः वह आर्दश एक स्मारक रूप में परिणत हो जाता है। इन तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्ग विहीन परम्परा को वहन करने के लिए मानवीयता के अतिरिक्त कोई भी उपाय सम्पन्न परम्परा समर्थ नहीं हुआ है।

इस तथ्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए जागृत परम्परा और शिक्षा का सुलभ होना आवश्यक है। तभी अखंड सामाजिकता, सह-अस्तित्व सिद्ध होता है।

वर्ग चेतना को मानवीय चेतना में परिवर्तित करना मानव कुल के लिए वांछित एवं अभीष्ट है। प्रत्येक स्थिति में मानव संस्कृति एवं सभ्यता की एकात्मकता ही इसका एक मात्र व्यावहारिक रूप है। इसे

समृद्ध बनाने योग्य शिक्षा एवं व्यवस्था पद्धति की स्थापना ही मूल प्रक्रिया है, इसकी समानतः सभी व्यवस्था संस्थाओं में अर्थात् राज्यनैतिक एवं धर्मनैतिक में समान रूप हो जाना ही अभ्युदय है। यही व्यावहारिक समाधान का प्रमाण है। अनेक धर्म के स्थान में मानव धर्म का, अनेक जाति के स्थान पर मानव जाति का, अनेक राष्ट्र के स्थान पर अखंड समाज और भूमि का, रहस्यात्मक अनेक ईश्वर के स्थान पर व्यापक सत्ता रूपी ईश्वर का पूर्णतया बोध कराने वाली पद्धति से वर्ग चेतना मानवीय चेतना में परिणित होती है। यही व्यक्ति के जीवन में सार्वभौमिक आचरण, परिवार में सहयोग, समाज में प्रोत्साहन, राष्ट्र में संरक्षण-संवर्धन, अंतर्राष्ट्र में अनुकूल परिस्थितियाँ हैं। यही सर्वमंगल कार्यक्रम है, यही समृद्धि एवं समाधान है।

प्रत्येक मानव के जीवन में घटने वाली घटनायें गर्भ, जन्म, नामकरण, शिक्षा, दीक्षा, विवाह एवं मृत्यु के रूप में दृष्टव्य हैं। ये प्रत्येक घटनायें मानव में संस्कारों का निर्माण करती हैं। अर्थात् मूल प्रवृत्तियों में परिवर्तन को स्थापित करती हैं। प्रत्येक मानव गर्भावस्था से ही संस्कार पूत होने के लिये प्रवृत्त है। जीवन एवं जीवन गति में संस्कार ही प्रत्यक्ष होता हुआ देखा जाता है। जीवन परिष्कृति के लिये संस्कारों में गुणात्मक परिवर्तन आवश्यक एवं अनिर्वाय है। गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक ही क्रियापूर्णता एवं आचरण पूर्णता सिद्ध होता है। सुसंस्कार परिचय इसी सीमा में चरितार्थ होता है जिसके लिए प्रत्येक मानव प्यासा है। ये सुसंस्कार अर्थात् मानवीयता एवं अतिमानवीयतापूर्ण जीवन प्रदायी प्रेरणा परम्परा ही मानवीय संस्कृति है, जो मानव से मानव को परम्परात्मक पद्धति से उपलब्ध होता है। उक्त सभी घटनाओं में प्रेरणा प्रदायी प्रक्रिया ही संस्कृति का आद्यान्त कार्यक्रम है। इसी अर्थ सिद्धि के लिए ऐतिहासिक स्मरण एवं कला

प्रदर्शन भी सहायक है। यही जीवन की चरितार्थता है।

“सफलता ही चरितार्थता है।” व्यक्ति में सफलता चारों आयामों के एकसूत्रतापूर्ण कार्यक्रम में हैं। फलतः समाधान एवं समृद्धि है। सामाजिक सफलता दश सोपानीय व्यवस्था की एकात्मकता है। फलतः सह-अस्तित्व एवं अभयता है।

“जो जिसका अपव्यय करेगा वह उससे वंचित हो जायेगा।” यह सिद्धान्त स्वयं इस स्थिति को स्पष्ट कर रहा है कि सद्व्ययता में ही प्राप्त उपलब्धियों की अक्षुण्णता रहेगी अन्यथा में, से, के लिए उससे वंचित होने अवश्यम्भावी है। यह सत्यता मानव को उत्प्रेरित करता है कि उपलब्धि एवं उपलब्धि के स्रोत अस्त होने के पहले उसे अनुस्यूत बनाये रखने के लिए तत्पर हो जाए। यह तत्परता केवल देव पद चक्र में ही सफल होता है। इसी में समाधान समृद्धिपूर्वक सत्यता सहज अनुभूति प्रमाणित होता है। अनुभूति मूलक जीवन ही मानव की चिरवांछा है। भ्रांति पर्यंत अनुभव संभव नहीं है। अनुभव ही जीवन का वरीयतम आयाम है। जिस में, से, के लिए अन्य तीनों आयाम अर्थात् विचार, व्यवहार एवं उत्पादन अनुभव से ही संचालित होना अभ्युदय है। अस्तु, मानव जीवन के कार्यक्रम को मानवीयता पूर्वक दश सोपानीय व्यवस्था में आत्मसात् कर लेना ही सर्वमंगल, शुभ, समाधान, समृद्धि, सह-अस्तित्व एवं अभय है।

7

## मानव में संस्कार प्रक्रिया

मानवीयतापूर्ण जीवन में, से, के लिए सुसंस्कारों का अभाव नहीं है। गर्भ संस्कार से ही मानव में संस्कार प्रक्रिया आरंभ होता है। गर्भावस्था में गर्भवती द्वारा किया गया धीरता, वीरता और उदारतापूर्ण एवं दया, कृपा, करुणापूर्ण संभाषण एवं आचरण गर्भस्थ शिशु में उत्तम संस्कारों का कारण होता है। गर्भवती द्वारा किये गए व्यक्तित्व के स्मरण एवं आचरण गर्भस्थ शिशु में सुसंस्कारों के कारण होते हैं। गर्भवती में पायी जाने वाली सौम्यता, सरलता, पूज्यता, सौजन्यता, अनन्यता, सहजता, आदर, सौहार्द्रता एवं निष्ठापूर्ण आचरण गर्भगत शिशु में सुसंस्कारों का कारण होता है। गर्भवती द्वारा कृतज्ञता, श्रद्धा, गौरव, प्रेम, वात्सल्य, विश्वास, स्नेह, ममता एवं सम्मान की अनुभूतियाँ गर्भगत शिशु में सर्वोच्च संस्कारों का निर्माण करता है। गर्भ से संस्कारपूत शिशु में जन्म और जन्म के अनंतर सुसंस्कारों को ग्रहण करने में सुगमता होता है। गर्भवती के आहार, विहार, व्यवहार की संयमता गर्भगत शिशु में वरिष्ठ संस्कारों को प्रदान करती है। गर्भावस्था में शिशु में प्राण व रस का संचालन एवं पूर्ति गर्भवती के शरीर के क्रियाकलाप पर आधारित है। यही गर्भस्थ शिशु का वातावरण है। वातावरण का दबाव स्वाभाविक है। वातावरणस्थ क्रिया का संकेत प्रसारण प्रदायिता सहित प्रक्रिया ही वातावरण का दबाव है। चैतन्य क्रिया में वातावरणस्थ क्रियाओं के संकेत ग्रहण एवं प्रसारण प्रक्रिया को पाया जाता है। गर्भस्थ शिशु के शरीर के साथ चैतन्य क्रिया का



होना स्वाभाविक है। अस्तु, गर्भस्थ शिशु का वातावरण शुभद होने के लिए जो निश्चित पद्धति वर्णित है उसके विपरीत अर्थात् अमानवीय जीवन यापन पूर्वक सुसंस्कारपूत संतान को पाना संभव नहीं है।

**“जन्म समय में भी संस्कारों का अभाव नहीं है।”** अर्थात् स्वीकृतियों का अभाव नहीं है। चैतन्य इकाई में ही संस्कारों का होना पाया जाता है। सुसंस्कार ही गुणात्मक परिवर्तन के लिए मूल तत्व है। सुसंस्कारीयता विहीन पद्धति से जागृति में संक्रमित होना संभव नहीं है। जागृति के लिए प्रत्येक मानव इकाई बाध्य है। इस सत्यतावश मानव जागृति योग्य संस्कारीय कार्यक्रम को अपनाने के लिये विवश है। अस्तु, मंगलमय कामनापूर्ण वातावरण का जन्म समय में निर्माण करने से, कोलाहल विहीन वातावरण को बनाए रखने से सुगम प्रकाश, सुखद वायु, मधुर संभाषण की व्यवस्थिति का निर्माण करने से जन्म समय में उत्तम संस्कार स्थापित होता है।

**“नामकरण संस्कार प्रसिद्ध है।”** नाम विहीन मानव नहीं है। नामकरण व्यवहार के लिए एक अनिवार्यतम घटना है। नामकरण प्रक्रिया में माता-पिता के अतिरिक्त अन्य कुटुम्ब परिवार बन्धुओं की सम्मति रहती है। जो स्वयं में एक ज्ञापन प्रक्रिया है। इस सम्मति के साथ ही शुभ कामना का होना पाया जाता है। स्वयं के संबोधन के लिए नामकरण प्रक्रिया है। शुद्धतः मानव का मूल रूप चैतन्य क्रिया है। चैतन्य क्रिया के साथ स्थूल शरीर का संयोग होना ही जन्म घटना होती है। इसी मूल कारणवश नामकरण परम्परा है। शिशु के नामकरण के समय में शुभकामनाएं एवं वातावरण सहायक तत्व है। शुभकामनाएं एवं वातावरण परस्पर सुखप्रद होता है, जो प्रत्यक्ष है। प्रधानतः चैतन्य क्रिया को इंगित कराने वाला नाम शुभद होता है। अन्ततोगत्वा स्वयं के बोध एवं अनुभव में ही नाम चरितार्थ

होता है। यह देखा जाता है कि नामकरण के कुछ समय पश्चात् ही शिशु उस नाम के साथ स्वयं के संबोधन को स्वीकारता हुआ देखा जाता है, जो सर्वविदित तथ्य है। यह सत्यता स्पष्ट करती है कि तादात्म्य-तदाकार योग्य-योग्यता शैशवावस्था से ही समाया रहता है। पूर्ण स्वीकृति ही अनन्यता है, जो प्रत्येक मानव के नाम में स्पष्ट होता है। जो परम विशिष्ट प्रक्रिया है। यही अनुभव क्षमता का द्योतक है, और संकेतग्राही क्षमता का लक्षण है। यही क्रम से शिष्टता को प्रकट करने का मूल तत्व है। इस अनन्यता योग्य क्षमता को शुभ नाम संबोधन उद्दीप्त करता है अर्थात् प्रखर बनाता है। अनन्यता ही प्रधान शिष्टता है, जो प्रेम को अभिव्यंजित करने में समर्थ है। प्रेम ही जीवन में पूर्ण मूल्य है। प्रेममयता ही अभयता का अनुभव है। संबोधन क्रम से स्थापित संबंधों को ज्ञात कराता है। प्रत्येक संबंध में स्थापित मूल्य प्रसिद्ध है। प्रत्येक संबंध की चरितार्थता केवल अभयता एवं अनिवार्यता ही है। जो मानव का लक्ष्य है। प्रत्येक चैतन्य इकाई जीवन घटना में लक्ष्य को साधना चाहती है। इसी महत्वपूर्ण भूमिका का आरम्भ नामकरण से होता है। अस्तु, मानवीयता का प्रबोधन उद्बोधन करने का आधार भी नाम ही है। जीवन में प्रमाण सिद्धि या प्रामाणिकता को उद्दीप्त एवं प्रकट करने के लिए आधार केवल नाम ही है। नामकरण संस्कार जीवन के कार्यक्रम में एक कड़ी है।

**“मानव जीवन में गुणात्मक जागृति के लिए शिक्षा-संस्कार प्रसिद्ध है।”** गुणात्मक विकास के लिए प्रेरणा प्रदान करने का कार्यक्रम पद्धति, नीति, वस्तु, विषय, प्रणाली एवं प्रक्रिया ही मानव जीवन में शिक्षा-संस्कार का प्रत्यक्ष रूप है। यह क्रम से माता-पिता, परिवार, संपर्क, संबंध, शिक्षा मंदिर, शिक्षा संस्थान एवं मानवकृत

वातावरण से सम्पन्न होता है। प्रत्येक मानव जन्म से जाति एवं वर्ग विहीन है। शिक्षापूर्वक ही उसमें वर्गीय, जातीय संस्कारों को स्थापित किया जाता है, जो मानवता के लिए वांछित घटना नहीं है। इसका विकल्प अर्थात् मानवीयतापूर्ण संस्कृति एवं सभ्यता का अप्रचुर होना ही ऐसी अवांछित घटना के लिए विवशताएं हैं। इसका निराकरण मानवीयतापूर्ण जीवन चित्रण एवं ऐसी चेतना की परम्परा ही है, जो शुद्धतः मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता में विलीन होती है। गुरु मूल्य में लघु मूल्य का विलय होना पाया जाता है। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक विद्यार्थी में क्रम से शैशव, बाल एवं किशोरावस्था से ही माता-पिता, परिवार, शिक्षा मन्दिर, शिक्षा संस्थान, व्यवस्था-पद्धति, प्रचार, प्रकाशन, प्रदर्शन-समुच्चय द्वारा मानवीयता पूर्ण जीवन एवं जीवन के कार्यक्रम को उद्बोधन-प्रबोधन कराने वाली प्रक्रिया परम्परा ही वर्ग विहीन चेतना को प्रस्थापित करने का एकमात्र उपाय है। यही मानवीय संस्कृति का मौलिक देय है। संस्कृति एवं सभ्यता से संबद्ध शिक्षा सर्वसुलभ न होने से अखंड सामाजिकता में प्रत्येक व्यक्ति के भागीदार होने की संभावना नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि इसका सर्वसुलभ होना अनिवार्य है। यही शिक्षा-संस्कार की गरिमा, महिमा एवं जीवन में अविभाज्यता है।

शिक्षा में प्रधानतः मानव की परस्परता में निहित स्थापित एवं शिष्ट मूल्य का प्रबोधन है साथ ही वस्तु मूल्यों का शिक्षण भी। स्थापित एवं शिष्ट मूल्य की पूर्ण स्वीकृति एवं अनुभूति ही प्रबुद्धता का प्रत्यक्ष रूप है, जो व्यवहार में प्रमाणित होता है। व्यवहार में केवल स्थापित मूल्य का निर्वाह एवं शिष्ट मूल्य का प्रकटन होता है। यही मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता की चरितार्थता है। इसके अभाव की स्थिति में कितने भी विशाल वस्तु मूल्य की उपलब्धि एवं योग्यता

का उर्पाजन करने पर भी सामाजिकता की सिद्धि होना संभव नहीं है। मानवीयता में ही सामाजिकता सिद्ध होती है। सामाजिकता से ही सुसंस्कृति की अक्षुण्णता होती है। यही सत्यता प्रत्येक मानव को प्रत्येक स्तर एवं स्थिति में अमानवीयता से मानवीयता, मानवीयता से अतिमानवीयता पूर्ण जीवन में प्रबोधन पूर्वक संक्रमित होने के लिए बाध्य की है। यही उदय एवं जागृति का प्रधान लक्षण है।

धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा एवं करुणा पूर्ण स्वभाव से अभिभूत होकर व्यवहार में आरूढ़ होने के लिए प्रदान की गई शिक्षा एवं सम्मान, आदर एवं पुरस्कार पूर्वक सम्पन्न की गई प्रक्रिया ही मानव जीवन में उपादेयी सिद्ध हुई है। शिक्षा के माध्यम से ही श्रेष्ठ संस्कारों की स्थापना होती है। न्यायान्याय, धर्माधर्म एवं सत्यासत्य पूर्ण दृष्टियों की सक्रियता पूर्वक सुयोजित पद्धति प्रक्रिया सहित व्यवहार एवं आचरण करने की क्षमता एवं आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने योग्य योग्यता को प्रबोधन पूर्वक व्यवहृत करने योग्य स्थिति, परिस्थितियों का निर्माण कर देने पर सर्वश्रेष्ठ संस्कारों की स्थापना होती है। वित्तेषणा, पुत्रेषणा, लोकेषणा एवं भ्रम मुक्ति के संदर्भ में किया गया प्रबोधन सर्वोत्तम संस्कारों को स्थापित करता है। मानवीयतापूर्ण व्यवहार एवं कर्माभ्यास पूर्ण उत्पादन शिक्षा-संस्कार से विद्यार्थियों में अभ्युदय अवश्यंभावी होता है। फलतः मूल्य के अनुभव योग्य क्षमता प्रकट होती है। ऐसी संस्कार प्रक्रिया ही मानवीयता को व्यवहार रूप में साकार रूप प्रदान करती है। मूल्य व लक्ष्य तंत्रित राज्यनीति एवं धर्मनीति के प्रबोधन से श्रेष्ठ संस्कार स्थापित होते हैं। मानवीयतापूर्ण संस्कृति की शिक्षा से ही कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान एवं स्नेहात्मक मूल्यों का अनुभव करने योग्य संस्कारों की स्थापना होती है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति के

अनुसरण योग्य सौम्यता, सरलता, पूज्यता, अनन्यता, सौजन्यता, सहजता, आदर, सौहार्द्रता एवं निष्ठात्मक शिष्टता को अभिभूतता पूर्वक अभिव्यक्त करने योग्य संस्कारों की स्थापना होती है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति सम्बद्ध शिक्षा ही प्राकृतिक एवं वैकृतिक ऐश्वर्य का सदुपयोग एवं सुरक्षा करने योग्य संस्कारों की स्थापना करती है। यही क्रम से विधि-निषेध एवं व्यवस्था-अव्यवस्था का निर्णय करने योग्य सुसंस्कारों को स्थापित करती है। यही क्रम से मानव की चिर आशा एवं तृषा है। शिक्षा ही मानव में संस्कार परिवर्तन की अतिमहत्वपूर्ण प्रक्रिया एवं कार्यक्रम है। शिक्षा में ही संस्कृति एवं सभ्यता का उद्बोधन-प्रबोधनपूर्वक स्फुरण होता है, जो व्यक्तित्व को प्रकट करता है।

**“विवाह मानव के लिए अवांछित घटना नहीं है।”** विधिवत् वहन करने के लिए की गई प्रतिज्ञा ही विवाह है। मानवीयता में ही विधिवत् जीवन का विश्लेषण हुआ है, जिसमें विवेक-विज्ञान सम्पन्न जीवन सुसम्बद्ध होता है। जिसका प्रत्यक्ष रूप कायिक-वाचिक-मानसिक, कृत-कारित-अनुमोदित भेद से किए सभी क्रियाकलापों में अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा ही है। यही वैध सीमा की सीमा है। विवाह घटना में दो जागृत मानव द्वारा समान संकल्प के क्रियान्वयन की प्रतिज्ञा है। यह समाज गठन का भी एक प्रारूप है। विवाह गठन में निर्भय जीवन की कामना व प्रमाण समायी रहती है। सामाजिकता का अंगभूत जीवन क्रियाकलाप के प्रति प्रतिज्ञा ही विवाह में उत्तम संस्कार को प्रदान करती है। मानवीयतापूर्ण जीवन, व्यवस्था क्रम एवं जीवन के कार्यक्रम में संकल्प ही दृढ़ता को प्रदान करता है। यही विवाह-संस्कार की प्रधान धर्मीयता है। इस उत्सव को शुभ कामनाओं सहित बन्धु परिवार समेत सम्पन्न किया

जाता है। इस घटना में वधू एवं वर का संगठन होता है। इन दोनों में संस्कृति की साम्यता ही सफलता का आधार है। मानव में संस्कृति साम्य मानवीयता में सुलभ होता है। विवाह संस्कार प्रधानतः परस्पर दायित्व वहन के लिए घोषणा है। यह घोषणा मानवीयता सहज रूप में सफल होती है। विवाह संयोग संस्कृति एवं सभ्यता को साकार रूप देने के लिए प्रतिज्ञा है जो मानवीयता पूर्ण विधि से होती है। विवाह उत्पादन, उपयोग एवं वितरण के स्पष्ट कार्यक्रम को आरंभ करने के लिए बाध्य करता है। यही आवश्यकता से अधिक उत्पादन की आवश्यकता को जन्म देता है। यह मात्र मानवीयता पूर्वक सफल होता है। विवाहित जीवन व्यवस्था में, से, के लिए बाध्य होता है। अविवाहित जीवन में भी वैधता सहज व्यवस्था की अनिवार्यता स्वीकार्य होती है। मानवीयता पूर्वक ही पुरुषों में यतित्व अर्थात् देव मानव एवं दिव्य मानवीयता की ओर गतिशीलता एवं नारियों में सतीत्व उसी अर्थ में स्पष्ट होता है। जो आर्थिक एवं सामाजिक संतुलनकारी मूल तत्व है। अस्तु, विवाह-संस्कार का आद्यान्त अर्थ निष्पत्ति मानवीयतापूर्ण आचरण एवं मानव कुल का संरक्षण है।

**दीक्षा संस्कार प्रत्येक मानव के लिए अनिवार्य है।** **“मानव धर्मीयता का अनुभव करने के लिए की गई प्रक्रिया, पद्धति एवं प्रणाली ही दीक्षा है।”** दीक्षा संस्कार गुणात्मक परिवर्तन की ओर सुस्पष्ट दिशा निर्देशन के संदर्भ में ज्ञातव्य है। दिशा जागृति सहज प्रमाणों के क्रम में अग्रिमता को इंगित है। मानव जीवन जागृति क्रम में अमानवीयता से मानवीयता एवं मानवीयता से अतिमानवीयता की ओर है। शिक्षा द्वारा मानवीयता को स्थापित किया जाना, दीक्षा द्वारा अतिमानवीयता की ओर दृढ़ता एवं गति को प्रस्थापित करना ही इन दोनों संस्कारों की चरितार्थता है, जो सर्व

वांछनीय उपलब्धि है। मानवीयतापूर्ण जीवन प्रतिष्ठा के बिना दीक्षा संस्कार सफल नहीं होता है। दीक्षा संस्कार स्वमूल्य और मौलिकता का अनुभव करने के लिए ही दिशादायी प्रक्रिया है। स्वमूल्यांकन मात्र अनुभव है क्योंकि “मूल्य” भी अनुभव प्रमाण ही है। यही अनुभव क्षमता पर मूल्य में निष्णातता है। पूर्णता एवं परिपक्वता की सम्मिलित प्रक्रिया ही निष्णातता है। स्वमूल्यानुभूति योग्य क्षमता ही सर्वोच्च जागृति है। यही क्रम से जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य, वस्तु मूल्य के वरीयता क्रम को प्रमाणित करता है। अनुभव योग्य क्षमता ही स्वमौलिकता है। अनुभव क्षमता ही क्रम से आचरण, व्यवहार एवं व्यवसाय में प्रकट होती है जिसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि समाधान एवं समृद्धि है। मानव जीवन अनुभवमय है। जागृति के क्रम में यह एक संभावना एवं जागृति पूर्णता में उपलब्धि है। यही विशेषतः जागृत को अजागृत में अवबोधन, प्रबोधन एवं निर्देशनपूर्वक अनुभव योग्य क्षमता, योग्यता पात्रता को प्रस्थापित करने के लिए बाध्य करती है। यही दीक्षा संस्कार की गरिमा है। स्वागत पूर्वक स्वीकार्य योग्य बोध क्रिया ही अवबोधन क्रिया है, जिसकी चरितार्थता अवगत होने से है। आवश्यकता एवं अनिवार्यतापूर्वक स्वीकृति क्रिया से ही अवगत होने का तात्पर्य है।

दीक्षा ही व्रत, व्रत ही निष्ठा, निष्ठा ही संकल्प, संकल्प ही दृढ़ता, दृढ़ता ही प्रबुद्धता, प्रबुद्धता ही श्रद्धा-विश्वास एवं प्रेम, श्रद्धा-विश्वास एवं प्रेम ही अनुभूति तथा अनुभूति ही दीक्षा है। मानव में, से, के लिए व्रत अवधारणा है जो सत्यवक्ता, इन्द्रिय संयमता, विचार संयमता, अस्तेय, अपरिग्रह, निरपराधिता, ब्रह्मचर्य (संज्ञानीयता में संवेदनायें नियंत्रित रहना), विवेकशीलता एवं गुणात्मक परिवर्तन-शीलता है, जिनका प्रत्यक्ष रूप धीरता-वीरता-उदारता एवं दया,

कृपा, करुणा की अभिव्यक्ति ही है। व्रत का तात्पर्य गुणात्मक परिवर्तन की दिशा में आचरण की निरंतरता से है। गुणात्मक परिवर्तन की अपरिहार्यता जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति में पायी जाती है, जो वास्तविकताओं पर आधारित यथार्थता है। मूल्यमात्र ही अनुभूति तथ्य है। जीवन मूल्यमय है। इसकी अनुभूति ही आत्मानुभूति है। मूल्यमयता की अनुभूति ही तन्मयता है। मूल्यमयता ही मूल्यों में तादात्म्य है। यही समग्रता के प्रति सौजन्यता है, स्नेह निष्ठा व विश्वास जैसी मूल्य प्रदायी क्षमता है। स्थापित मूल्य अपरिवर्तनीय है। इनकी अनुभूति ही स्वयं शिष्टता को अभिव्यक्त करती है क्योंकि प्रत्येक स्थापित मूल्य प्रत्येक देश काल में एक सा स्थित पाया जाता है। स्थापित मूल्यानुभूति में, से, के लिए अनुगमन एवं अनुशीलन योग्य प्रेरणा, परम्परा, प्रक्रिया ही दीक्षा का आद्यान्त प्रमाण है। यह संस्कार मानवीयता पूर्ण जीवन के स्वभावगत होने के अनन्तर सफल होने वाला सहज सुलभ संस्कार है। यही चिन्तनाभ्यास की अर्हता है। सत्ता में अनुभूति ही चिन्तनाभ्यास का चरम लक्ष्य है। जीवन का लक्ष्य ही आचरण पूर्णता है, जिसका प्रत्यक्ष स्वरूप ही सजगता है। आचरण ही मानव को व्यक्त करता है। दया, कृपा, करुणा से परिपूर्ण होना ही चिन्तनाभ्यास का प्रयत्न प्रमाण है। यही दीक्षा का देय है। धीरता, वीरता, उदारता ही सामाजिकता की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है जो शिक्षा का देय है। दया, कृपा, करुणापूर्ण स्वभाव में अनुगमन होना ही दिव्य मानवीयता में संक्रमण है। यह अनुगमन प्रक्रिया ही चिन्तनाभ्यास है। दिव्य मानवीयता में अनुगमन सिद्धि ही प्रत्यावर्तन है। यही मध्यस्थ जीवन है। प्रत्यावर्तित जीवन आत्मानुशासित होता है। आत्मा मध्यस्थ क्रिया है इसलिए मध्यस्थ जीवन स्थापित सुलभ संभावना के रूप में है। मध्यस्थ जीवन ही

चरमोत्कृष्ट विकास है। पूर्ण विकास के लिए ही दीक्षा संस्कार एवं योगाभ्यास है। विकास की क्रमिकता इसी को स्पष्ट करती है। मानव प्रकृति का अभीष्ट सत्ता में अनुभूति है। जागृति में पूर्णता को स्थापित करना ही दीक्षा संस्कार का आद्यान्त उपलब्धि है। पूर्ण जागृत इकाई ही जनजाति में अग्रिम जागृति के लिए गति प्रदायी क्षमता स्थापित करने के लिए समर्थ है साथ ही समुचित शिक्षा प्रणाली, पद्धति एवं नीति को प्रस्थापित करने के लिए अर्ह होता है। इस तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्ण जागृत मानव ही लोक के लिए अत्यन्त उपयोगी व उपादेयी सिद्ध होता है। ऐसी इकाईयों की संख्या वृद्धि ही लोक मंगल का आधार है।

नियति क्रमानुषंगी न हो ऐसा कोई अस्तित्व प्रकृति की सीमा में नहीं है। इसी तथ्य के आनुषंगिक जन्म घटना के लिए चैतन्य क्रिया का बाध्य होना पाया जाता है। शरीर संचालन क्रिया के साथ ही शरीर त्यागने का कारण समाया रहता है। शरीर के माध्यम से जो गुणात्मक परिवर्तन होते हैं वह संवेदनशीलता व संज्ञानशीलता का ही स्वत्व है। उसका स्पष्ट रूप आशा, विचार, इच्छा व संकल्प में परिमार्जन प्रक्रिया है। यही प्रबुद्धता है। यही निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य है। प्रबुद्धता इससे अधिक नहीं है। इससे कम में तृप्ति नहीं है। पांडित्य ही सजगता एवं सतर्कता को प्रमाणित करता है। इसके पूर्ण होने तक गुणात्मक परिवर्तन के लिए बाध्यता पायी जाती है। यह क्रम अवश्यम्भावी है। शरीर त्यागने के समय में जो सेवाएं आवश्यक हैं उसे स्वयं से सम्पन्न करने में असमर्थता पायी जाती है इसका तात्पर्य चैतन्य इकाई में किसी असमर्थता से नहीं यह केवल शरीर चालन योग्य न होने से है। ऐसे समय में अपनत्व सहित अपनों की सेवा आकांक्षित एवं वांछित होती है। यही आकांक्षा एवं वांछा की पूर्णता

मरणोत्तर जीवन के लिए उपहार है तात्पर्य शरीर त्यागने के अनन्तर स्वभाव गति के लिए ये सेवाएं सहायक तत्व हैं क्योंकि मानव जीवन में प्रधानतः मानव मानव के आचरण, सेवा एवं व्यवहार से आवेशित होते हुए तथा आवेश से मुक्त होकर स्वभावगति में अवस्थित होते हुए देखा जाता है। इस सत्यता से यह स्पष्ट हो जाता है कि अजागृति में मानव ही मानव की आवेशित गति एवं स्वभाव गति का प्रमुख कारण है। यही सत्यता स्थापित मूल्य की अनुभूति, शिष्ट मूल्य की अभिव्यक्ति के लिए बाध्यता है। यही उदय है। मानव ही अपनत्व, तादात्म्य एवं तन्मयता पूर्वक अनन्यता पूर्ण शिष्टता को व्यक्त करता है। जब वह काँक्षानुरूप अपनत्व को प्राप्त नहीं कर पाता तब वह उस जन्म घटना के संदर्भ में पराभव को स्वीकारता है या उसके निष्प्रयोजन को स्वीकारता है। शरीर त्यागने के समय में जो अवधारणाएं स्वीकृत होती हैं वही पुनः जन्म लेते तक स्थायीभूत रहती हैं। यही संस्कार एवं संस्कार के लिए स्तुषि है। साधन के बिना इकाई में परिवर्तन या गुणात्मक परिवर्तन सिद्ध नहीं होता है। चैतन्य इकाई के लिए शरीर ही सर्वप्रथम साधन है। यही वरीय साधन भी है। इसी से उपसाधन निर्मित होते हैं। वह आकांक्षाद्वय के रूप में स्पष्ट है। इस प्रकार पूर्णता पर्यन्त साधनों से सम्पन्न होना तथा उसके सदुपयोग से सफलता एवं दुरूपयोग से असफलता की स्वीकार्यता का होना स्पष्ट होता है। यही अवधारणा है। यह अवधारणा ही संस्कार के रूप में प्रभावी होता है। ऐसी संस्कारदायी प्रक्रिया में वातावरण एवं अध्ययन ही साधन समुच्चय है। सेवा, आचरण एवं व्यवहार ही मानव मानव के प्रति वातावरण निर्माण करने का प्रधान उपादेयी तत्व है। उसके लिए उनसे की गयी मंगल-अमंगल, शुभाशुभ तथा उचित-अनुचित कृतियों का बारम्बार स्मरण किया जाना, फलतः स्वयं में सफलता-असफलता

का स्वीकार होना साथ ही अन्य के प्रति विश्वास या अविश्वास होना पाया जाता है। विश्वास परम्परा ही सांस्कृतिक परम्परा का प्राण-त्राण तत्व है। यही मानव में गुणात्मक परिवर्तन के लिए आधारभूत तथ्य है। विश्वास केवल मानव की परस्परता में निर्वाह होने वाला तथ्य है। विश्वास ही जीवन के अमरत्व को स्पष्ट करता है। नवधा स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही जन्म घटना के अनन्तर स्वर्गीयता तथा मृत्यु घटना के अनन्तर सुसंस्कार का स्थापना क्रम है। प्रत्येक मरणासन्न व्यक्ति की जीवन सफलता में विश्वास को स्थापित करना ही मरणोत्तर जीवन के लिए उत्तम संस्कार है। शरीर कष्ट के परिहारार्थ समुचित चिकित्सा एवं सेवा समर्पण, वैचारिक समस्या परिहार योग्य व्यवहार एवं आचरण पूर्ण वातावरण से मरणोत्तर जीवन के लिए उत्तम संस्कार की स्थापना होती है। **जीवन के अमरत्व एवं शरीर के नश्वरत्व एवम् व्यवहार के नियम संबंधी संबोधन, प्रबोधन प्रक्रिया से मरणोत्तर जीवन में उत्तम संस्कार की स्थापना होती है।** मरणासन्न व्यक्ति में अपनत्व के प्रति विश्वास को स्थापित करने तथा अनिवार्य सेवाओं से सम्पन्न करने से वेदना विहीन मृत्यु घटना भावी होती है। **फलतः मरणोत्तर जीवन में उत्तम संस्कार की स्थापना होती है।** वेदना विहीन मृत्यु घटना में मानवीयतापूर्ण वातावरण अनिवार्य है, जो मरणासन्न व्यक्ति की तृप्ति का कारण होता है। वेदना विहीन मृत्यु घटना के सहायक क्रियाकलाप ही मृत्यु संस्कार में गण्य हैं। शैशवावस्था में जिस प्रकार प्यार और स्नेहपूर्ण सेवा-सुश्रुषा अनिवार्य है इसी प्रकार मरणासन्नावस्था में भी अनिवार्य है। यही मरणोत्तर जीवन में उत्तम संस्कार को स्थापित करता है। शरीर त्यागने के अनन्तर उनके जीवन की चरितार्थता, गौरव एवं सम्मानात्मक घटना, व्यक्तित्व-चारित्र्य-स्मरण एवं सद्गुणों

का वर्णन किया जाना मरणोत्तर जीवन में सुसंस्कारों का कारण होता है। साथ ही उनके अभ्युदय की कामना भी उनके सुसंस्कारों में सहायक सिद्ध होती है। क्योंकि प्रत्येक इकाई द्वारा की गयी शुभकामना का प्रसारण होता है। प्रत्येक प्रसारण ग्रहण के लिए उपलब्धि है। मरणोत्तर स्थिति में भी ग्रहण क्षमता रहती ही है। साधन विहीनतावश भी प्रसारण क्रिया का अभाव होता है।

## अखण्ड सामाजिकता के लिए चेतना विकास मूल्य शिक्षा अनिवार्य है

संस्कार ही संस्कृति को प्रकट करता है। संस्कृति ही सभ्यता को अभिव्यक्त करती है। आहार, विहार एवं व्यवहार के रूप में सभ्यता स्पष्ट होती है। इनके वरीयता क्रम में व्यवहार, विहार एवं आहार है। व्यवहार में एकात्मकता की प्रतीक्षा है यही न्याय की याचना अथवा प्रत्याशा है। परस्पर व्यवहार में ही न्यायग्राही-प्रदायी वाँछा सफल होती है।

अखण्ड समाज-परम्परा में ही प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का संतुलन, उदय एवं उसकी अक्षुण्णता रहती है। यही भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान है। यही मध्यस्थ जीवन का प्रत्यक्ष रूप है। मध्यस्थ जीवन का तात्पर्य न्याय-प्रदायी क्षमता, सही करने की परिपूर्ण योग्यता सत्य बोध सम्पन्न रहने से है। न्याय ही व्यवहार में तथा नियम ही व्यवसाय में मध्यस्थता सत्य अनुभव को सिद्ध करता है। मूल्य-त्रयानुभूति योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता इसका प्रमाण है। यही शिक्षा एवं दश सोपानीय व्यवस्था सहज महिमा है। शिक्षा एवं व्यवस्था ही मूल्यानुभूति एवं मूल्यवहन योग्य क्षमता को प्रदान करती है। यही वर्गविहीनता का एकमात्र आधार एवं उपलब्धि है। वर्गवादी शिक्षा एवं व्यवस्था सामाजिकता को प्रदान करने में समर्थ नहीं है। फलतः निर्विषमता, निर्भ्रमता, अभयता एवं समृद्धि की उपलब्धि नहीं

है। मानव का अध्ययन जब तक पूर्ण नहीं होगा तब तक भ्रम है। भ्रम ही अपूर्णता है। अपूर्णता ही प्रकारान्तर से वर्ग भावना को जन्माती है। अपूर्णता के बिना वर्ग भावना का प्रसव नहीं है। निर्विषमतापूर्वक ही मानव में अखण्डता, सामाजिकता, समाधान एवं समृद्धि का अनुभव होता है। निर्भ्रमता ही निर्विषमता है। यही सार्वभौमिकता है। मूल्य-त्रयानुभूति ही निर्भ्रमता का प्रमाण है। मूल्य मात्र सर्वदेशीय एवं सर्वकालीय होने के कारण सार्वभौमिक है। सार्वभौमिकता ही निर्विषमता है। सामाजिक मूल्यों का शिष्ट मूल्यों सहित निर्वाह ही न्यायपूर्ण जीवन है। स्थापित मूल्य एवं शिष्ट मूल्य का योगफल ही सामाजिकता है। वस्तु मूल्य ही समृद्धि है।

नैतिकतापूर्ण जीवन की अपेक्षा मानव की परस्परता में दृष्टव्य है। यही प्रत्येक स्तर एवं स्थिति में भी पाया जाने वाला तथ्य है। धर्मनीति एवं राज्यनीति ही सम्पूर्ण नीति है। अर्थ ही उनका आधार है। इन नीति-द्वय का विधिवत् पालन ही नैतिकता है। प्रत्येक मानव नैतिकता से सम्पन्न होना चाहता है। प्रत्येक संस्था प्रत्येक मानव को नैतिकता से परिपूर्ण बनाना चाहता है। धर्म नैतिक एवं राज्यनैतिक संस्थाओं द्वारा मानव को नैतिकता से परिपूर्ण करने का संकल्प किया जाना प्रसिद्ध है। भौतिकवादी व्यवस्था पद्धति में संदिग्धता है। शिक्षा में अपूर्णता का तात्पर्य पर्याप्त वस्तु-विषय, समुचित नीति, पद्धति तथा उसकी सर्वसुलभता न होने से है। शिक्षा प्रणाली पद्धति का पूर्ण होना अनिवार्य है। जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति के पूर्ण विश्लेषण संपन्न वस्तु-विषय का समावेश हुए बिना शिक्षा प्रणाली में पूर्णता संभव नहीं है। प्रधानतः सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व और चैतन्य प्रकृति के अध्ययन की अपूर्णता ही मानव को सभ्रम बनाने का कारण है। भ्रमता सामाजिकता नहीं है। मानव का अतिमहत्वपूर्ण रूप चैतन्य

क्रिया ही है। चैतन्यता का तात्पर्य आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभूति सहज प्रमाण से है। यह परमाणु की गठनपूर्णता के अनन्तर गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक प्रकट होने वाली क्रिया एवं तथ्य है। रासायनिक क्रिया की सीमा में आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभूति का प्रकट न होना पाया जाता है। चैतन्य परमाणु में ही इन तथ्यों का उद्घाटन होना प्रमाणित है। प्रकृति में ही विकास क्रम, ज्ञानावस्था में निर्भ्रम जागृत मानव द्वारा दृष्टव्य है। अधिक विकसित, कम विकसित का दृष्टा है। विकासशीलता प्रकृति का कार्य सीमा है। विकासशीलता के लिए प्रकृति के अतिरिक्त और कोई वस्तु या तत्व नहीं है। सत्तामयता में तरंग या गति सिद्ध नहीं होता है। सत्ता में प्रकृति के अतिरिक्त और कोई अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। इन प्रमाणों से प्रकृति की विकासशीलता के प्रति भ्रम निवारण होना पाया जाता है। सत्ता, स्वयं में पूर्ण रहना प्रमाण सिद्ध है। इसी सत्यता से स्पष्ट होता है कि “पूर्ण” सत्ता परिणामशील नहीं है, नित्य वर्तमान है।

स्थितिपूर्ण सत्ता में हस्तक्षेप संभव नहीं है। सत्ता तरंग गति एवं सीमा नहीं है। यही पूर्णमय महिमा है। सत्ता रचना विहीन साम्य ऊर्जा रूप में स्थिति है जो प्रभाव विशेष है। यही नियम, न्याय, धर्म, सत्य एवं आनन्द स्थिति में जागृत मानव परंपरा में प्रमाण है। अपूर्ण का ही पूर्णता के लिए परिणामरत, परिमार्जनरत होना स्वभाव सिद्ध तथ्य है क्योंकि परिणाम स्वयं की, मैं की अपूर्णता को स्पष्ट करता है। पूर्ण में समाविष्ट रहने के कारण प्रकृति में पूर्णता के लिए तृषा है। यही तृषा क्रम से विकास क्रम में अनेक यथास्थितियाँ सम्पूर्णता के साथ और “पूर्णता-त्रय” पर्यन्त विकास व जागृति को स्पष्ट करता है। इसी जागृति क्रम में मानव जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का अध्ययन करने योग्य अवसर को प्राप्त किया है। इस अवसर का प्रयोग,

व्यवहार एवं अनुभवपूर्वक प्रमाणित हो जाना ही सफलता है। चैतन्य क्रिया जागृति सहज प्रमाण प्रस्तुत करता है न कि जड़ क्रिया। अनुभवपूर्ण जीवन ही सफल जीवन है। मानव में अनुभव का अभाव नहीं है। स्थापित मूल्यानुभूति पर्यन्त मानव भ्रम से मुक्त नहीं है। मूल्य-त्रयानुभूति की सर्वसुलभता ही शिक्षा एवं व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम है। मौलिक शिक्षा अर्थात् मानवीय शिक्षा चेतना विकास मूल्य शिक्षा सहज सर्वसुलभता पर्यन्त सामाजिकता एक कल्पना ही है। उसकी सहकारिता शिक्षा की पूर्णता एवं उसकी सर्वसुलभता पर निर्भर करता है।

मानव जीवन का विधिवत् कार्यक्रम धर्मनीति, अर्थनीति एवं राज्यनीतिक रूप में स्पष्ट है। मानव का ऐसा कोई विधिवत् कार्यक्रम नहीं है जो इन तीनों से संबद्ध न हो। नीति, पद्धति एवं प्रणाली का संयुक्त रूप ही व्यवस्था है। व्यवस्था विहीन जीवन वांछित को पाने में असमर्थ रहेगा। व्यवस्था विहीनता अथवा व्यवस्था में अपूर्णता जीवन की पूर्णता के अर्थ में प्रयोजित नहीं होती है। यही प्रत्येक जीवन में अपूर्णता है। जीवन में अपूर्णता ही जीवन के कार्यक्रम में अपूर्णता है। जीवन के कार्यक्रम में अपूर्णता ही भ्रम एवं समस्या है। भ्रम एवं समस्या ही व्यवस्था में अपूर्णता है। व्यवस्था को मानव ही अनुभव एवं व्यवहारपूर्वक प्रमाणित करता है। फलतः उसे सर्वसुलभ बनाने के लिए प्रस्थापना, स्थापना एवं संचालन करता है जो चरितार्थता का स्पष्ट रूप है। प्रत्येक मानव नियति-क्रम व्यवस्था का अनुभव करने के लिए अवसर रहते हुए योग्यता, पात्रता न होने के कारण शिक्षा एवं व्यवस्था में समर्पित होता है या ऐसे अधिकार सम्पन्न अधिकारी होने के लिए समर्पित होते हैं। हर मानव संतान शिक्षा-संस्कार पूर्वक ही प्रबुद्ध होने की व्यवस्था है। यह नियति है। क्योंकि



मानव ज्ञानावस्था की इकाई है। ज्ञान परम्परा से ही सर्वसुलभ होता है। किसी मानव को ज्ञान की तृषा हो वह तृषा परम्परा में सुलभ न हो, ऐसे स्थिति में कोई मानव संतान ही उसकी भरपाई करता हुआ घटना विधि से स्पष्ट हुआ है। इसी क्रम में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन बनाम मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) मानवीय शिक्षा-दीक्षा व्यवस्था परम्परा में समावेश होने अर्पित है। शिक्षा एवं व्यवस्था केवल प्रबुद्धता की प्रबोधन एवं संरक्षण प्रक्रिया है। यह विभूति मूलतः किसी मानव की ही अनुभूति है। अनुभूति ही वरीय प्रमाण है। ऐसी शिक्षा एवं व्यवस्था संहिता मानव के समग्र जीवन के प्रति अनुभवपूत होते तक उनमें परिवर्तन, परिमार्जन के लिए समुचित प्रक्रिया है। साथ ही वह दायी एवं उत्तरदायी भी है। ऐसी पूर्णता का प्रमाण अखण्ड समाज है जिसके लिए धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक एकरूपता पूर्वक दश सोपनीय व्यवस्था में एकात्मकता को प्रदान करने योग्य सक्षम दर्शन संहिता ही आधार है। यही प्रत्येक मानव में मन-तन-धनात्मक अर्थ की सर्ववांछित सुरक्षा एवं सदुपयोगात्मक क्षमता को प्रादुर्भावित करता है। साथ ही सर्वसुलभता भी करता है। फलतः अखण्ड समाज की सिद्धि होती है।

मानव में ज्ञान शक्ति की अर्थात् आशा, विचार, इच्छा एवं संकल्प अनुभव प्रमाण शक्ति ही धीरता, वीरता एवं उदारता तथा दया, कृपा एवं करुणा है। विषम जीवन जीव चेतनावश पराभवित, जागृत मानव जीवन समाधानित एवं मध्यस्थ जीवन सफलता से परिपूर्ण सिद्ध होता है। मानव मध्यस्थ जीवन के लिए ही प्रमाण होना जागृति है। असफलता मानव की वांछित घटना या उपलब्धि नहीं है। सफलता ही मानव की चिर तृषा, वाँछा, आकाँक्षा, इच्छा एवं संकल्प है। सफलता के बिना मानव जीवन अपूर्णता को स्पष्ट करता है।

अपूर्णता ही पूर्णता के लिए बाध्यता है। अंतरंग शक्तियाँ अर्थात् आशा, विचार, इच्छा एवं संकल्प तथा चतुरायाम की परस्परता में और बहिरंग अर्थात् पाँचों स्थितियों की परस्परता में विषमता ही अंतर्बहिर्विरोध है। यही असामाजिकता, अमानवीयता, वर्ग एवं संकीर्ण सीमान्वर्ती संगठन का, समता ही सामाजिकता अर्थात् वर्ग विहीनता का एवं मध्यस्थ कार्यक्रम में स्वतंत्रता का अनुभव प्रमाण सिद्ध है। दिव्य मानव में ही धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनीतियाँ स्वतंत्रतापूर्वक चरितार्थ होती हैं। वे देव मानव में संयमतापूर्वक सफल होती हैं। मानवीयतापूर्ण मानव में समाधानपूर्वक सफल एवं चरितार्थ होती हैं। यह मानवीयतापूर्ण शिक्षा एवं व्यवस्था पद्धति से सर्वसुलभ एवं चरितार्थ होती है।

अन्तर्विरोध विहीनता ही मध्यस्थता है। यही संतुलन, समाधान, प्रत्यावर्तन, सतर्कता, सजगता एवं स्वतंत्रता है। अंतर्विरोध परस्पर मन-वृत्ति-चित्त-बुद्धि, चतुरायाम में तथा दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था में विश्लेषित है। यही गुणात्मक परिवर्तन के लिए बाध्यता है। मानव के अंतर्विरोध से मुक्त होने का आद्यान्त लक्षण, उपाय एवं उपलब्धि ही है। साथ ही मानव अंतर्विरोध में, से, के लिए प्रयासी नहीं है। संपूर्ण प्रयास विरोध के मुक्ति के अर्थ में ही है। अंतर्विरोध का विरोध प्रत्येक व्यक्ति में दृष्टव्य है। यही सत्यता विरोध का विरोध करती है। विरोध, विजय, सफलता एवं चरितार्थता विकास क्रम में गण्य है। विकास-क्रम में अवरोधता ही विरोध, विकास की ओर गतिशीलता ही विजय, क्रियापूर्णता ही सफलता तथा आचरण पूर्णता ही जीवन चरितार्थता है। विकासक्रम शाश्वत है। विकास में बाधा ही द्रोह भ्रमवश उसके निराकरण हेतु की गई प्रक्रिया ही विद्रोह है। द्रोह का विद्रोह भावी है। प्रिय-हित-लाभ-सीमान्वर्ती दृष्टि से किया गया

निर्णय एवं क्रियाकलाप अंतर्विरोध से मुक्त नहीं है। इन सबका न्याय सम्मत होना ही अंतर्विरोध से मुक्ति है। न्याय सम्मति तब तक संभव नहीं है जब तक स्थापित मूल्यानुभूति एवं उसका निर्वहन न हो जाय। न्याय ही व्यवहार में मध्यस्थता है। मध्यस्थता ही सम और विषम अर्थात् समातिरेक और विषमातिरेक को संतुलित एवं आत्मसात् करता है। सम-विषम दोनों मध्यस्थता में आश्रित एवं संरक्षित हैं। यही सत्यता मध्यस्थता एवं मध्यस्थ जीवन की प्रतिष्ठा, महत्ता एवं अपरिहार्यता को स्पष्ट करता है। व्यवहार में मध्यस्थता ही बहिर्विरोध अर्थात् पाँचों स्थितियों के विरोध का शमन करता है। विचार में मध्यस्थता चारों आयामों के अंतर्विरोध का उन्मूलन करती है। अनुभव में मध्यस्थता परमानन्द को उद्गमित करती है। चैतन्य प्रकृति का मानवीयतापूर्ण मानव एवं सर्वोच्च विकसित निर्भ्रम मानव ही अंतर्विरोध से मुक्त होता है। यही जागृति-क्रम की उपलब्धि एवं गरिमा है। विरोध विहीनता ही मानव का अभीष्ट है। विरोध-विहीन क्षमता ही कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान एवं स्नेह जैसे स्थापित मूल्यों का अनुभव करता है। फलतः सौम्यता, सरलता, पूज्यता, अनन्यता, सौजन्यता, सहजता, आदर, सौहार्द्रता एवं निष्ठा जैसे मूल्यों को मानव अभिव्यक्त करता है। यही विश्वास का परिचय है। ऐसे विश्वास को सर्वसुलभ बनाना ही शिक्षा एवं व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम है।

**मानव के संपूर्ण संबंध गुणात्मक परिवर्तन के लिए सहायक हैं।**

प्रत्येक मानव, मानव से न्याय की याचना करता ही है। यही गुणात्मक परिवर्तन की तृषा एवं उसका द्योतक है। गुणात्मक परिवर्तन ही जागृति है। जागृति स्वयं में संतुलन, समाधान एवं नियंत्रण है, जो

जीवन का अभीष्ट है। जागृति क्रम में प्रत्येक मानव सुख सहज अपेक्षा प्रमाणित करता है। इसके मूल में सत्यता यही है कि प्रत्येक मानव अधिकाधिक विकास की ओर प्रगति होना ही है। यह साम्य आकाँक्षा भी है। साथ ही मानव, मानव के साथ व्यवहार करने के लिए बाध्य है। व्यवहार विहीन स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन की संभावना नहीं है। मानव में स्थापित मूल्यानुभूति पूर्वक ही गुणात्मक परिवर्तन होता है। इससे यह स्पष्ट हो पाता है कि प्रत्येक संबंध में निहित मूल्य निर्वाह ही जागृति का तथा उसकी उपेक्षा ही हास का प्रधान कारण है। प्रत्येक संबंध में परस्पर न्याय की उपलब्धि ही गुणात्मक परिवर्तन का आधार, प्रक्रिया एवं गति है। संघर्ष जनाकाँक्षा एवं उपलब्धि के मध्य में पायी जाने वाली रिक्तता ही है। इस रिक्तता को भली प्रकार से अरिक्तता में परिवर्तित करने का उपाय केवल मानवीयतापूर्ण शिक्षा एवं व्यवस्था पद्धति है। सार्थक चरितार्थ वर्तमान होता है। ऐसी व्यवस्था से ही प्रत्येक संबंध में न्याय प्रदायी एवं ग्राही क्षमता का प्रमाण होता है। फलतः सर्वमंगल एवं नित्य शुभोदय होता है।

**“प्राकृतिक एवं वैकृतिक वातावरण, अध्ययन एवं संस्कारों के योगफल से प्रवृत्ति, वृत्ति एवं निवृत्ति का उत्कर्ष होता है।”** उत्थान की ओर गतिशीलता ही उत्कर्ष है। उत्थान मात्र जागृति है। उत्थान की ओर बाध्यता एवं अनिवार्यता, पतन की ओर भ्रम एवं विवशता होती है। भ्रम अजागृति का द्योतक है। इसके विपरीत अधिक जागृत मानव ही कम जागृत के विकास में सहायक हो जाना ही सामाजिकता एवं सौजन्यता है। समाधान एवं अनुभूति क्षमता ही कम जागृत के जागृति में सहायक होने का धैर्य, साहस, विवेक एवं उदारतापूर्ण व्यवहार है। ऐसी परिमार्जित क्षमता के अभाव

में उसका कम विकसित के विकास में सहायक होना संभव नहीं है। जागृत जीवन सहज कार्यक्रम के विधिवत् क्रियान्वयन होने की स्थिति में दूसरों को दृढ़ता प्रदान करना सहज है। जब मानव मानवीयता से परिपूर्ण, समृद्ध एवं समाधानित होता है तभी अन्य मानवों में ऐसे गुणों को विकास करने के लिए वह सहायक होता है। अमानवीय मानव कितना भी रूपवान, बलवान, धनवान एवं पदवान हो जाय, वह अजागृत के जागृति के लिए सहयोगी नहीं हो पाता है। इसके विपरीत में मानवीयता एवं अतिमानवीयता पूर्ण मानव कितना भी न्यूनतम रूप, बल, धन एवं पद से सम्पन्न क्यों न हो उनका अजागृत के जागृति में सहायक होना पाया जाता है। जैसे अत्यन्त कुरूप मानव भी जब व्यक्तित्व एवं प्रतिभा से सम्पन्न होता है तब उनसे अधिकाधिक रूपवान, बलवान, धनवान एवं पदवान को शिक्षा एवं उपदेश मिलता है। उसे वे ग्रहण करते हुए देखे जाते हैं। इस प्रमाण से यह सिद्ध हो जाता है कि बुद्धि अन्य चारों अर्थात् रूप, बल, धन एवं पद से वरीय है। व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का मूल रूप बौद्धिक क्षमता अर्थात् प्रबुद्धता ही है। बौद्धिक क्षमता में ही गुणात्मक परिवर्तन होता है न कि रूप, बल, धन व पद में। फलतः व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संतुलन स्थापित होता है। व्यक्तित्व विहार, व्यवहार एवं आहार में प्रकट होता है। प्रतिभा ज्ञान-विज्ञान विवेकपूर्वक व्यवस्था एवं उत्पादन अर्थात् निपुणता कुशलता एवं पाण्डित्य में प्रत्यक्ष होती है। इन दोनों का संतुलन ही सह-अस्तित्व का रूप है। निर्विरोधिता ही जीवन का अभीष्ट है। यही अभ्युदय एवं निरन्तर शुभोदय का उदय है।

## 9

## कुशलता, निपुणता एवं पांडित्य ही ज्ञानावस्था की मूल पूंजी है।

निपुणता व कुशलता का प्राकृतिक ऐश्वर्य पर नियोजन बराबर उपयोगिता एवं कला मूल्य की स्थापना है। कुशलता एवं पांडित्य का व्यवहार में नियोजन बराबर शिष्ट मूल्य का प्रकटन एवं निर्वाह है। पांडित्य का अनुभवमूलक विधि से नियोजन बराबर मानव मूल्य व स्थापित मूल्यों का निर्वाह है। पांडित्य से परिपूर्ण होने से ही धीरता, वीरता एवं उदारता पूर्ण स्वभाव व्यवहृत होता है। निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य से परिपूर्ण होने का अवसर प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान है। उसे विकसित व्यक्ति अविकसित व्यक्ति को प्राप्त कराने के लिए दायी है। उसे उससे वंचित रखना सामाजिक द्रोह है अर्थात् अविकसित के विकास में अवरोध है। विकास में अवरोध ही आतंक, भय एवं सशंकता है। यही मानव में अंततोगत्वा प्रताड़ना है। इस प्रताड़ना से परित्रस्त मानव का विकास अर्थात् समाधान एवं समृद्धि के लिए आतुर-कातुर एवं आकुल-व्याकुल होना स्वाभाविक है। पांडित्य संज्ञानीयता पूर्ण संचेतना का अध्ययन है। संचेतनशीलता का तात्पर्य ही पूर्णता को पाने की उत्कंठा है। पूर्णता सतर्कता एवं सजगता के रूप में प्रत्यक्ष होती है। पूर्णता के बिना मानव आश्वस्त व विश्वस्त नहीं है। संचेतना ही दर्शन-क्षमता है। दर्शन-क्षमता ही वातावरण क्रिया संकेत-ग्रहण एवं प्रसारण-प्रक्रिया है। यही मानव को स्वयं की विवेचना के लिए बाध्य करती है। वातावरणस्थ इकाईयों के विश्लेषण

की श्रृंखला में स्वयं के विश्लेषण के लिए बाध्यता होती है, जिसे प्रत्येक स्तर में प्रत्येक व्यक्ति अनुभव करता है। मानव जीवन का अतिमहत्वपूर्ण पक्ष संज्ञानशीलता से नियंत्रित संवेदनशीलता ही है। संचेतनावश ही दूरादूर, कालाकाल, उचितानुचित, विहिताविहित, नित्यानित्य, सत्यासत्य, न्यायान्याय, धर्माधर्म की दर्शन एवं अनुभव क्षमता है। संचेतना का सर्वोच्च प्रयोजन अनुभव क्षमता है। अनुभव क्षमता ही जागृति है। अनुभव से अधिक आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता से अधिक के लिए प्रयास नहीं है, यही अक्षुण्ण परम्परा है, जो प्रसिद्ध है। संवेदनशीलता व संज्ञानशीलता ही चैतन्य क्रिया की विशेषता है जिसमें आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभूति क्रिया संपन्न होती है। अस्तित्वपूर्णता की अनुभूति होती है। यही स्थिति सत्य में अनुभूति है। स्थितिशीलता में ही विकास क्रम दृष्टव्य है। स्थितिशील प्रकृति का सत्ता में संपृक्त रहना ही सह-अस्तित्व का प्रत्यक्ष प्रमाण है। व्यवसाय में नियम, व्यवहार में न्याय, विचार में धर्म एवं अनुभूति में सत्य है। वस्तुस्थिति एवं वस्तुगत सत्य का दर्शन होता है। यह दर्शन करने वाली एवं अनुभव करने वाली क्रिया चैतन्य ही है। चैतन्य प्रकृति ही ज्ञानावस्था में जागृति पूर्वक पूर्णता को प्रकट करता है। इसी क्षमता में सजगता एवं सतर्कता का प्रमाण होना प्रसिद्ध है।

**“पाण्डित्य अनुभूति का, कुशलता शिष्टता एवं कला पक्ष का, निपुणता उपयोगिता एवं यांत्रिकता का अध्ययन व प्रमाण है।”** यह अध्ययन समुच्चय है। यही क्रम से समृद्धि, समाधान एवं अभयता है। यही मानव का आद्यान्त अभीष्ट है। निपुणता एवं कुशलता ही प्रतिभा तथा पाण्डित्य ही व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व विहीन प्रतिभा सामाजिक सिद्ध नहीं होता है। प्रतिभाविहीन व्यक्तित्व समृद्ध

नहीं होता है। व्यक्तित्व और प्रतिभा की संतुलित उपलब्धि के बिना जीवन सफल नहीं है। निपुणता, कुशलता एवं पाण्डित्य क्रमशः संवेदनशीलता एवं संज्ञानशीलता की ही अभिव्यक्ति एवं उपलब्धि है। यह तत्त्वतः अनुभवमूलक गति की गरिमा है। जीवावस्था में संवेदनशीलता का प्रकाशन है। पदार्थावस्था एवं प्राणावस्था में कम्पनात्मक गति रहती है। निपुणता का प्रकाशन जीवावस्था व जीवावस्था के पूर्व स्वेदज प्रकृति से आरंभ होता है। प्रत्येक जीव किसी एक क्रिया में निपुण होता है। जैसे - चींटी, दीमक, मधुमक्खी संग्रह एवं आवास रचना में, व्याघ्र हिंसा कार्य में, पक्षी उड़ान भरने में, मेंढक ऋतु को पहचानने में विशेष निपुणता को प्रकट करते हैं। साथ ही व्याघ्र, चींटी या पक्षी का कार्य करने में असमर्थ सिद्ध हुआ है। इस सत्यता से यह स्पष्ट हो जाता है कि आवश्यकता के आधार पर जीवन की आवश्यकता को उपलब्ध करने का प्रयास जीवावस्था से ही आरम्भ हुआ है। निपुणता का प्रारूप इसी अवस्था में प्रत्यक्ष हुआ है। इस प्रकार प्रत्येक जीव किसी न किसी क्रिया में निपुणता को प्रकट करता रहा है जबकि मानव अनेक क्रियाओं में निपुण होने का अधिकारी है और होता है। मानव में निपुणता की अभिव्यक्ति उपयोगिता मूल्य को स्थापित करने में स्पष्ट हुई है। यह क्रम से प्रकृति के विकास एवं जागृति क्रम में पायी जाने वाली उपलब्धि है। **परंपरा ही इतिहास को स्पष्ट करती है।** परंपरा रूपी इतिहास में विश्वास होना स्वाभाविक है जैसे यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता सहज उद्घाटन जागृति को जागृति के रूप में पहचाना जाता है। पीढ़ी से पीढ़ी में स्वीकार होता है। दूसरा हर पीढ़ी में जागृति स्वीकृत होता है। इस वर्तमान में परंपरा में न होते हुए भी यह अपेक्षा के रूप में सर्वाधिक मानव में होना पाया जाता है।

अनावश्यक घटनाओं के इतिहास विगत होते जाते हैं, वर्तमान में रहते हैं। विवशतावश युद्ध की तैयारी भी की जाती है, दोहराना भी पाया जाता है। यही स्पष्ट घटनाएं मानव को प्रेरित करता है कि इससे मुक्ति कैसे हो। इसलिए मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद की प्रस्तुति हुई।

पदार्थावस्था में रूप प्रधान परम्परा, प्राणावस्था में गुण प्रधान परम्परा, जीवावस्था में स्वभाव प्रधान परंपरा एवं ज्ञानावस्था में धर्म प्रधान परम्परा प्रसिद्ध है। ये चारों परम्पराएं क्रमशः इन चारों अवस्थाओं के लिए आधार हैं। जबकि प्रत्येक अवस्था की प्रत्येक इकाई में रूप-गुण-स्वभाव-धर्म अविभाज्य रूप में समाये रहते हैं। यही अवस्था विशेष का इतिहास है। अभिव्यक्ति ही परम्परा है। विकास क्रम में अवस्थाएं दृष्टव्य हैं। अवस्थानुरूप ही संप्रेषणा, प्रकाशन व अभिव्यक्ति के लिए प्रवृत्ति हैं। इन प्रवृत्तियों का प्रकटन सह-अस्तित्व सहज वातावरण है। अवस्थानुरूपीय प्रकाशन इकाई में स्वीकृत होता है। फलतः प्रकाशन होता है। इसी क्रम में परम्परा एवं इतिहास की श्रृंखला होती है। मानवेत्तर तीनों अवस्था की सृष्टि में पारंपरिक वैविध्यता नहीं है। जबकि मानव का अनेक परम्परा में होना उसकी वैविध्यता को स्पष्ट करता है। प्रकृति की इस ऐतिहासिक स्थिति से ज्ञात होता है कि मानवेत्तर सभी सृष्टि अपनी परम्परा से विचलित नहीं है। साथ ही मानव भ्रमवश विचलित होना पाया जा रहा है। इसका साक्ष्य अनेक परंपरा, वर्ग, संघर्ष एवं युद्ध है या युद्ध में तत्परता है। मानव की विशुद्ध परंपरा जागृति मूलक धर्म पर आधारित है। ज्ञानावस्था का धर्म केवल सुख है। इसी की चार स्थितियाँ सुख, शांति, संतोष, आनंद के रूप में वर्णित हैं। “मानव धर्म एक, समाधान अनेक” मानव जीवन की सफलता इसी में सिद्ध होती है। मानव सहज समुदाय

परम्परा में वैविध्यता, विषमता का द्योतक है। परस्पर मानव में विषमता शुभोदय का कारण नहीं है। सर्वमंगल एवं शुभोदय इतिहास जागृति संबद्ध होता है, यही संबद्धता परंपरा है। इसी परम्परा में जागृति सिद्ध अवस्था अनुरूप प्रकटन का होना ही स्वस्थ परम्परा का लक्षण है। मानव में मानवीयता का प्रकटन होना ही स्वस्थ परम्परा है। विशुद्ध जागृत मानव परम्परा वास्तविकताओं का अनुसरण, अनुगमन एवं अनुसंधान है। गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक गति में द्रोह और विद्रोह का अत्याभाव है। यही सत्यता स्वस्थ परम्परा का साक्ष्य है। ऐसी स्वस्थ परम्परा में ही निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य की संयुक्त चरितार्थता होती है। निपुणता एवं कुशलता के संयुक्त योगफल में उपयोगिता एवं कला मूल्य सिद्ध होते हैं। निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य की संयुक्त चरितार्थता में भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान सर्वसुलभ है। यही मानव इतिहास की स्थापना एवं अक्षुण्णता है। निपुणता एवं कुशलता ही तकनीकी शिक्षा के रूप में उपलब्ध है। संपूर्ण तकनीकी शिक्षा मानव के आकांक्षाद्वय संबंधी उपयोगिता को प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन स्थापित करने के लिए सहज-सुलभ उपाय, क्रिया, प्रक्रिया, पद्धति एवं प्रणाली है जिसे मानव करतलगत करता है। इसकी आद्यांत उपलब्धि अर्थात् तकनीकी शिक्षा की उपलब्धि उपयोगिता एवं कला ही है। मानव शुद्धतः संवेदनशील होते हुए भी यांत्रिक साधनों से सम्पन्न होना चाहता है। संवेदनशीलता में गुणात्मक परिवर्तन की क्रम श्रृंखला में यांत्रिक तत्व साधन सिद्ध होते हैं। इसी सत्यतावश संवेदनशीलता एवं यांत्रिकता के संदर्भ में मानव अध्ययन करने के लिए बाध्य है। अध्ययन पूर्वक शोध तब तक भावी है जब तक अज्ञात एवं अप्राप्ति स्थिति रहती है। यांत्रिकता का अध्ययन निपुणता एवं कुशलता में सीमित है जबकि संवेदनशीलता सहित संज्ञानशीलता के अर्थ में अध्ययन पांडित्य,

कुशलता एवं निपुणता-समुच्चय में, से, के लिये है। संज्ञानीयतापूर्ण संवेदनशीलता का उद्गमन अनुभव में, से, के लिये है। सुख मानव धर्म में, से, के लिये है। मूल्य सुख में, से, के लिये है। मानव धर्म मानवीय परंपरा में, से, के लिए है। मानवीय परम्परा क्रियापूर्णता एवं आचरणपूर्णता में, से, के लिए है। पूर्णता, पूर्णता की निरंतरता में, से, के लिए है। “पूर्णता-त्रय” की निरंतरता ही जागृति का वैभव है। सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति का वैभव सह-अस्तित्व का प्रत्यक्ष रूप में स्पष्ट होता है।

प्रकृति का वैभव संवेदनशीलता के उत्कर्ष, परमोत्कर्ष सम्पन्नता से पूर्ण होता है। संवेदनशीलता का गुणात्मक परिवर्तन ही उसका उत्कर्ष है। संचेतनशीलता की चरमोत्कृष्ट उपलब्धि अनुभूति है या उसका प्रयोजन केवल अनुभवमयता है। अनुभवमयता ही तन्मयता है। उसकी विशालता यही है। यही सतर्कता एवं सजगता से संपन्न होती है। पूर्णानुभूति ही पूर्ण विशालता है। यही परमानन्द है, जिसके लिए ज्ञानावस्था की प्रत्येक इकाई प्यासी है। यही जीवन की अक्षुण्णता है। ऐसे जीवन के लिए अनादि काल से प्रयास हुआ है। इसकी सफलता मानव की मानवीयता से परिपूर्ण होने से है। इसका साक्ष्य व्यवहार में व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के संतुलित उदय से है। यह उदय शिक्षा एवं व्यवस्था से संपन्न होता है।

मानव परम्परा का स्वधर्मीयता के अतिरिक्त ऐतिहासिक होना संभव नहीं है। इतिहास ही अक्षुण्णता का साक्षी है और उसके आनुषंगिक कार्यक्रम ही विश्वास है। इतिहास संबद्ध कार्यक्रम के बिना चरितार्थता एवं योजना के प्रति अथवा कार्यक्रम के प्रति विश्वास स्थापना संभव नहीं है। विश्वास के अभाव में निष्ठा का होना नहीं पाया जाता है। निष्ठा होने के लिए विश्वास का होना अनिवार्य है।

विश्वास ही साम्य मूल्य है। विश्वास विहीन धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक कार्यक्रम सफल नहीं होता। **असफलता इतिहास नहीं है। वह एक अवांछित व अस्वीकृत घटना है। सफलता की परंपरा होती है। असफलता की परम्परा नहीं होती है। सफलता के क्रम में ही गुणात्मक परिवर्तन संभव है। असफलता का कोई क्रम नहीं होता, अपितु व्यतिक्रम होता है। व्यतिक्रम ही भ्रम है।** इस तथ्य से सिद्ध हो जाता है कि असफलता गुणात्मक परिवर्तन नहीं है। इसके स्थान पर वह प्रतिक्रान्ति है। हास अपेक्षाकृत व्यतिक्रम ही है। क्रम एवं व्यतिक्रम दोनों ही नियम से संरक्षित हैं।

प्रत्येक व्यक्ति धर्मीयता को प्रसारित, प्रमाणित करने के लिए इच्छुक है। धर्मीयता विहीन इकाई नहीं है। हर जागृत व्यक्ति ही मानव परम्परा में आचरण के लिए शिक्षा है। प्रत्येक मानव का आचरण दूसरे के ज्ञातव्य में आता है। प्रत्येक मानव वातावरणस्थ क्रियाओं के संकेत को किसी न किसी अंश में ग्रहण करने योग्य क्षमता से सम्पन्न है। शिक्षा परम्परा ही प्रधानतः संस्कृति का प्रथम सोपान है। यही न्यायपूर्ण व्यवहार, संयत आचरण एवं नियम-पूर्ण उत्पादन के लिए समुचित प्रोत्साहन, प्रेरणा, मार्गदर्शन, सहयोग एवं सहानुभूतिपूर्ण कार्यक्रम को वहन पूर्वक अर्थात् निर्वाह पूर्वक स्पष्ट करती है। यही संस्कृति पूर्ण सभ्यता का अर्थ है। इसी से धीरता, वीरता एवं उदारता पूर्ण व्यवहार का प्रसव होता है। यही सामाजिक अभयता एवं अखण्डता का द्योतक है। यही सभ्यता है। सभ्यता के संरक्षण के लिए ही विधि व व्यवस्था का प्रभावशीलन है। यही ऐतिहासिक परम्परा सहज सूत्र है। यही जागृत जीवन परम्परा है। ऐसी ऐतिहासिक जीवन परंपरा में अपूर्णता की पूर्णता भावी है। यही ऐतिहासिकता की गरिमा है।

सफलता क्रम अथवा परम्परा ही पूर्णता को प्रदान करती है। “पूर्णता-त्रय” स्पष्ट है ही। मानव में पूर्णता का प्रत्यक्ष रूप ही अखण्डता, सार्वभौमता, अभयता एवं समृद्धि है। यही जीवन तृप्ति एवं तृप्ति योग्य कार्यक्रम के लिए प्रेरणा-स्रोत है। सामाजिक अखण्डता में ही अभयता सर्वसुलभ होती है। जीवन में तृप्ति ही स्वधर्मीयतापूर्ण प्रसारण का प्रधान लक्षण है। मानव संस्कृति ही सामाजिक अखण्डता, अभयता एवं समृद्धि को सिद्ध करती है।

**“पांडित्य ही जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य की अनुभूति एवं शिष्ट मूल्य की अभिव्यक्ति है।”** प्रत्येक जागृत मानव जीवन सफलता सहज कामना से ओत-प्रोत है। प्रधानतया सफलता अनुभूति एवं शिष्टता ही है। यह अनुभव एवं व्यवहार सिद्ध प्रमाण है। अनुभूति विहीनता पूर्वक शिष्टता सहित जीवन सफलता का प्रमाण नहीं है। अनुभवशील या अनुभव पूर्ण हो, शिष्ट न हो इसका भी प्रमाण नहीं है। शिष्ट न होने में अनुभव का न होना ही है। साथ ही अनुभव का न होना ही शिष्ट न होना है। इसका निराकरण मानव धर्म से परिपूर्ण होना ही है, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। मानव धर्म के अतिरिक्त सामाजिक अखण्डता का प्रमाण नहीं है। इसे स्थापित एवं संरक्षित करना ही शिक्षा की गरिमा, प्रबुद्धता की महिमा, व्यवस्था में पारंगतता, जीवन में सार्थकता, भौमिक स्वर्गीयता, मानव में दैवीयता एवं दिव्यता, नित्य मंगलमयता एवं धर्ममय सफलता है। यही मानवीयता पूर्ण “नीति-त्रय” का विस्तार है। यही प्रत्येक मानव में धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा एवं करुणात्मक वैभव को उद्गमित करता है। साथ ही संरक्षण एवं संवर्धन करता है। यही मानव धर्म एवं संस्कृति की साम्य उपलब्धि है। वैभवता का प्रकटन मानवीयता में ही होता है। विभवता ही वैभव

है। विवेकपूर्ण हो जाना ही वैभव है। विभव ही सफलता की परम्परा है। परम्परा ही संस्कृति है। परम्परा के बिना इतिहास नहीं है। इतिहास से संबद्ध हुए बिना वर्तमान में निष्ठा, भविष्य में विश्वास नहीं है। फलतः ऐसा वर्तमान पुनः इतिहास नहीं है। अस्तु, मानव का इतिहास मानवीयता से आरम्भ होता है एवं उसका निर्वाह होता है। साथ ही मानव परम्परा में उसकी अक्षुण्णता सिद्ध होती है। जागृति सहज वैभव ही जीवन में स्वर्ग है। यह अभयता एवं समृद्धि है। यह प्राप्त अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा का प्रत्यक्ष परिणाम है। यही धर्मनीति एवं राज्यनीति का आधार एवं जीवन की चरितार्थता है। साथ ही न्यायान्याय, सत्यासत्य, धर्माधर्म दृष्टि की क्रियाशीलता है। “ऐषणा-त्रय” एवं भ्रम-मुक्ति सीमान्तवर्ती जीवन परम्परा है। जागृत मानव परम्परा ही अक्षुण्णता है जो प्रसिद्ध है। अमानवीयता की अक्षुण्णता संभव नहीं है। अमानवीय जीवन किसी मानव के वांछित, प्रत्याशित, आशित एवं सुयोजित आचरण की उपलब्धि नहीं है। प्रत्येक मानव मानवीयतापूर्ण जीवन में संक्रमित होना चाहता है। प्रत्येक मानव मानवीयता से परिपूर्ण होना चाहता है। प्रत्येक मानव मानवीयता की अक्षुण्णता चाहता है। ये सभी साक्ष्य यह निष्कर्षात्मक निर्णय प्रदान करते हैं कि मानव की पाँचों स्थितियाँ मानवीयता पूर्ण जीवन में, से, के लिए संक्रमित हो जायें। इस प्रेरणा के साधार एवं प्रमाणित होने के कारण संभावना एक अनिवार्यता के रूप में एवं अनिवार्यता व्यवहारान्वयन के रूप में समीचीन हुई है। अक्षुण्णता केवल समाधान, समृद्धि एवं अनुभूति परम्परा है। यही संस्कृति एवं सभ्यता की परम्परा है। यही इतिहासकारी है। अमानवीय आचरण, व्यवहार व संस्कृति इतिहासकारी नहीं है। **इतिहास वास्तविकता पर आधारित विकास जागृति सहज परंपरा है** अथवा पूर्णता की निरंतरता है। वास्तविकता समाधान में परिभाषित है न कि समस्या में। अमानवीयता में समस्या

से अधिक उपलब्धि नहीं है। मानवीयता पूर्ण समाधान सहज प्रमाण ही उपलब्धि है। इस सत्यता से यह सिद्ध होता है कि राज्यनैतिक एवं धर्मनैतिक सभी संस्थाओं, व्यवस्था संहिताओं, प्रचार, शिक्षा, प्रदर्शन, प्रकाशन, कला, उत्पादन, उपभोग, वितरण, व्यवहार एवं आचरण की प्रक्रिया को मानवीयता पूर्ण सार्वभौम तथ्य में संबद्ध कर लेना ही अखण्ड सामाजिकता का एकमात्र उपाय या शरण है। इसकी अक्षुण्णता ही दृढ़ता है। यही इतिहास है। इतिहास ही गौरव है। गौरव ही स्वसम्मान व अन्य में विश्वास है। गौरव एवं विश्वास स्थापित मूल्यानुभूति है। मूल्यवत्ता के बिना गौरव संभव नहीं है। गौरव विहीन स्थिति में मार्ग, क्रिया, व्यवहार, आचरण एवं दिशा में गुणात्मक परिवर्तन स्पष्ट नहीं होता है। फलतः स्थापित मूल्यानुभूति एवं सामाजिकता सिद्ध नहीं होती है। गौरवानुभूति के मूल में यथार्थता एवं वास्तविकता की ज्ञान परम्परा अर्थात् अनुभव परम्परा का होना आवश्यक है। यथार्थता एवं वास्तविकता अनुभूत है ही अथवा अनुभव सिद्ध प्रमाण है। अनुभव में, से, के लिए ही मानव सर्वथा, सर्वकाल देश में समर्पित होने के लिए बाध्य है अर्थात् शिक्षा पूर्वक आचरण करने के लिए तृषित है। इसी कारणवश मानव अनुभव परंपरा का गौरव करने के लिए अर्थात् पूर्णतया स्वीकृति पूर्वक अनुगमन एवं अनुसरण करने के लिए तत्पर है। इसके प्रमाण में उसके लिए उनमें प्रयास का अभाव नहीं है। “यह इंगित कराता है कि इतिहास को गौरवमय बनाना, बनाए रखना, बनाते ही जाना मौलिक उपलब्धि की परम्परा है।” यह उपलब्धि मानवीयता पूर्वक ही करतलगत एवं चरितार्थ होती है। प्रमाण विहीनता इतिहास नहीं है। अमानवीयता में जितने भी धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक घटनाएं हुई हैं, वे व्यक्ति का आचरण एवं परिवार का सहयोग उपलब्ध होते हुए भी ऐसे गौरवमय इतिहास को स्थापित करने में समर्थ नहीं हुई हैं, जिससे

प्रमाण पूर्ण परंपरा सिद्ध हो सके।

घटनाएं मानव के लिये प्रमाणित एवं प्रामाणिक होने के लिए प्रेरणा-स्रोत हैं। प्रामाणिकता अनुभव है। प्रमाण शिक्षा है। प्रत्येक दुर्घटना में भी एक सद्घटना की कल्पना, कामना, आकाँक्षा एवं आवश्यकता का मानव में प्रादुर्भाव होना पाया जाता है। यही ऐतिहासिकता के लिए भी प्रेरणा है। यह स्पष्ट है कि इतिहास का गौरव मानवीयता में ही संभव है अन्यथा असंभव है। मानवीयता में इतिहास सहज सुलभ परम्परा है। सही, न्याय, निरोग एवं अनुकूल वातावरण, सामान्य गति एवं स्वभाव गति, महत्वाकाँक्षा एवं सामान्यकाँक्षा, अभयता एवं स्वतंत्रता, भाव एवं ज्ञान, सम्मान एवं आदर, सह-अस्तित्व एवं समृद्धि, सत्य एवं धर्म तथा निर्भ्रान्ति एवं समाधान इन्हीं का इतिहास, प्रमाण एवं परम्परा प्रसिद्ध है। ये सब मानव में व्यक्तित्व एवं प्रतिभा में पाये जाने वाले अविभाज्य तथ्य हैं। इस प्रकार शुद्धतः व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का ही इतिहास होता है।

समाधान, समृद्धि, अनुभव एवं व्यवहार अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा पर आधारित है। अनुभव एवं समाधान पूर्ण होना ही शिक्षा एवं व्यवस्था-संहिता है। इन आधारों का अनुभव एवं समाधान ही शिक्षा व व्यवस्था का आद्यान्त लक्ष्य एवं कार्यक्रम के लिए आधार है। ये जब तक परिपूर्ण नहीं होते तब तक इनका सर्वसुलभ होना संभव नहीं है। समाधान एवं अनुभूति की सर्वसुलभता के बिना सामाजिकता एवं उसकी अक्षुण्णता सिद्ध नहीं होती। इसके लिए संपूर्ण शिक्षा एवं व्यवस्था संहिता को मानवीयता में परिवर्तित कर लेना ही एकमात्र उपाय है। जब तक व्यवहारिक संरक्षण नहीं, साथ ही शिक्षा भी सर्व-सुलभ नहीं होती तब तक व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के संतुलन, संस्कृति एवं सभ्यता के संतुलन, विधि एवं व्यवस्था के संतुलन की अपेक्षा



एक दुरुहता ही है। “दुरुहता ही रहस्य है।” रहस्य एक अनिश्चयता, सशंकता या भ्रम है। दुरुहता की स्थिति मानव के लिए गति एवं दिशा-निर्देशन पूर्वक गुणात्मक परिवर्तन के लिए उपकारी सिद्ध नहीं हुई है। जबकि मानव-जीवन में गुणात्मक परिवर्तन हेतु निश्चित दिशा एवं गति को प्रदान करना ही शिक्षा नीति-पद्धति-प्रणाली का एकमात्र उद्देश्य है, जिसमें ही उत्पादन-क्षमता का निर्माण करने वाले समर्थ तत्वों का समाया रहना आवश्यक है। समर्थ शिक्षा ही गन्तव्य के लिए गति एवं विश्राम के लिए दिशा को अध्ययन पूर्वक स्पष्ट करती है। यही शिक्षा की गरिमा है। उसी से मानव में प्रगति एवं विकास है। यही एक अभ्युदय का प्रधान लक्षण है। शिक्षा एवं व्यवस्था का संकल्प ही अभ्युदय है। अभ्युदय विहीन जीवन ही समस्या से ग्रस्त पाया जाता है। जीवन के कार्यक्रम का आधार ही अध्ययन है। अध्ययन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन की संयुक्त प्रक्रिया है। निश्चित अवधारणा की स्थापन प्रक्रिया ही निदिध्यासन है। अवधारणा ही अनुमान की पराकाष्ठा एवं अनुभव के लिए उन्मुखता है। अवधारणा के अनन्तर ही अनुभव होता है। अनुभव एवं समाधान दोनों के ही न होने की स्थिति में अध्ययन नहीं है। वह केवल निराधार कल्पना है। जो अध्ययन नहीं है वह सब मानवीयता को प्रकट करने में समर्थ नहीं है। इसी सत्यतावश मानव समाधान एवं अनुभूति योग्य अध्ययन से परिपूर्ण होने के लिए बाध्य हुआ है। यह बाध्यता मानवीयता पूर्ण पद्धति से सफल अन्यथा असफल है।

10

## संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था

“अनुभव एवं समाधान ही संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था में चरितार्थ होता है।” यही जीवन में सफलता एवं स्वर्ग है। ऐसी स्थिति को पाने के लिए, पाने के उद्देश्य से अथवा पाने की आकाँक्षा से ही अनादिकाल से मानव प्रयासरत है। रत का गन्तव्य रति है। रति केवल अनुभवात्मक एवं सान्निध्यात्मक प्रमाणित होती है। अनुभूति सत्ता में मूल्य-त्रय की ही होती है। सान्निध्यात्मक रति जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति की परस्परता में होती है। इसके अतिरिक्त सान्निध्यात्मक रति के लिए और कोई वस्तु नहीं है। मानव के चारों आयामों एवं दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था की एकसूत्रता एवं एकात्मता समाधान एवं अनुभूति में, से, के लिए है। धर्मनीति, अर्थनीति एवं राज्यनीति की अन्योन्याश्रयता भी अनुभूति एवं समाधान ही है। समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद एवं अनुभवात्मक अध्यात्मवाद भी अनुभूति एवं समाधान ही है। समाधान एवं अनुभूति के अभाव में मानव जीवन पराभवित, कुण्ठित एवं प्रतिक्रान्तित पाया जाता है। अर्थ समुच्चय का सदुपयोग एवं सुरक्षा क्रिया-प्रक्रिया भी अनुभव एवं समाधान में, से, के लिए है। मानव-जीवन की आद्यान्त उपलब्धि अनुभव एवं समाधान ही है। अनुभव एवं समाधान का योगफल ही जीवन चरितार्थता है। यही दृढता एवं अभ्यता है। अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा मानव का अभीष्ट है। यही इसकी सार्वभौमिकता का प्रमाण है। वास्तविकताएं सार्वभौमिक

हैं। अर्थ का सदुपयोग शिष्टता में प्रमाणित होता है। शिष्टताएं अनुभव में प्रमाणित होती हैं। प्रमाण विहीन जीवन के सफल होने की संभावना नहीं है। अप्रमाणिक जीवन स्वयं में क्षोभ, खेद, तृष्णा एवं पिपासा है। यही वास्तविकता की ओर संक्रमित होने के लिए बाध्यता है। वास्तविकताएं विकास के क्रम में निःसृत सृष्टि है। विकास क्रम का अभाव पूर्णता पर्यन्त नहीं हैं। विकास एवं जागृति की श्रृंखला में ही मानव-मानवीयता एवं समाज-सामाजिकता एक वास्तविकता हैं, जिसके सुदृढ़ आधार पर ही राज्य में एकात्मकता एवं समाज की अखंडता सिद्ध होती है। उसे पा लेना ही सामाजिक चरमोपलब्धि है।

**“विधि पालन कामना मानव में पायी जाती है।”**

कामना को इच्छा में, इच्छा को तीव्र इच्छा में, तीव्र इच्छा को संकल्प में, संकल्प को संभावना में, संभावना को सुगमता में, सुगमता को उपलब्धि में, उपलब्धि को अधिकार में, अधिकार को स्वतंत्रता में, स्वतंत्रता को स्वत्व में, स्वत्व को व्यवहार एवं उत्पादन में चरितार्थ करना ही शिक्षा एवं व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम एवं उपलब्धि है। यही विधि पालन क्षमता को स्थापित करने का प्रधान लक्षण है। व्यक्ति में जागृति सहज स्वतंत्रता ही विधि पालन क्षमता का द्योतक है। विधि-पालन के बिना व्यक्ति में संयमता सिद्ध नहीं होती है। विधि पालन के बिना जागृति प्रमाणित नहीं है। जागृति के बिना स्वतंत्रता का अर्थ नहीं है। शिक्षा में पूर्णता ही मानव में आवश्यकिय जागृति के लिए प्रेरणा एवं दिशादायी तत्व है। ऐसी उपलब्धि के लिए मानव अनवरत तृषित है। शुभकामनाओं को चरितार्थ करने के लिए शिक्षा, दीक्षा एवं वातावरण ही प्रधानतः आधार एवं दायी है। इन्हीं से मानव में गुणात्मक परिवर्तन होना वांछित उपलब्धि है। यही जीवन दर्शनकारी कार्यक्रम है। शिक्षा-दीक्षा एवं कृत्रिम वातावरण भी

संस्कारदायी है। कृत्रिम वातावरण एवं शिक्षा ही मानव के उत्थान एवं पतन का प्रधान सहायक तत्व हैं। प्रत्येक व्यक्ति व्यवस्था से संबद्ध है ही। व्यवस्था-विहीन जीवन नहीं है। कृत्रिम वातावरण आकाँक्षाद्वय संबंधी साधनों सहित सकारात्मक प्रचार-प्रदर्शन-प्रकाशन के रूप में दृष्टव्य है। आशित, अनिवार्यता, उपयोगिता एवं सुन्दरता का प्रत्यक्षीकरण पूर्वक जनजाति में बोधगम्य हृदयंगम सहित प्रोत्साहित करना ही कृत्रिम वातावरण का कार्यक्रम है। यह मानव से ही नियति के अनुसार निर्मित होता है। कृतिपूर्वक मूल्य त्रयानुभूति में निष्ठा का निर्माण करना ही कृत्रिमता की चरितार्थता है, जिसमें आकाँक्षाद्वय सीमानुवर्ती उत्पादन योग्य योग्यता को, मानवीयतापूर्ण व्यवहार एवं आचरण योग्य क्षमता को स्थापित करने में कृत्रिम वातावरण सफल अन्यथा असफल सिद्ध हुआ है। उत्पादन में अप्रवृत्ति एवं व्यवहार में दायित्व वहन में विमुखता एवं अतिभोग में तीव्र इच्छा ही लोक वंचना, प्रवंचना एवं द्रोह का प्रधान कारण है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव में साम्यतः पायी जाने वाली इच्छाओं को चरितार्थ करने के लिए मानवीयतापूर्ण संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था ही एक मात्र उपाय है।

**“विधि-विहित जीवन ही पाँचों स्थितियों एवं दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था में सफल है।”** शिष्ट मूल्य और मूल्यवत्ता का संयुक्त स्वरूप ही विधि है। मानव में अनुभव एवं समाधान का संयुक्त स्वरूप ही मूल्य व शिष्ट मूल्यवत्ता है। अनुभव एवं समाधान और न्याय का परावर्तन ही व्यवहार, व्यवस्था एवं उत्पादन का प्रमाण है। मानवीयता “नियम-त्रय” पूर्वक “कार्यक्रम-त्रय” सहित नवधा स्थापित मूल्य, नवधा शिष्ट मूल्य एवं द्विधा वस्तु मूल्य में किया गया विनियोग ही विधि है। विनियोग का तात्पर्य ही

प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभव सुलभ हो जाने से है। यह “सुलभ-त्रय” शिक्षा एवं व्यवस्था से होता है। यही विशिष्टता है। विशिष्टता ही शिक्षा एवं दीक्षा द्वारा प्रभावशील होता है। यही अनुभव परम्परा को स्थापित करता है। यही अनुभव प्रमाण को सिद्ध करता है। ऐसी प्रभावशीलन प्रक्रिया ही अभ्युदय है। जागृति, समाधान, अनुभव, अभय, अखंडता, समाज, राज्य, असंदिग्धता, सुरक्षा, सदुपयोग एवं समृद्धि क्षमता ही प्रबुद्धता का प्रत्यक्ष रूप है। प्रबुद्धता, प्रतिभा और व्यक्तित्व का समग्र रूप है। जीवन में इसका प्रकट हो जाना ही सफलता है। यही भौमिक स्वर्ग है, जिसके लिए ही मानव चिर प्रतीक्षु है। इसकी सफलता, प्रबुद्धता को सर्वसुलभ बनाने वाली शिक्षा एवं व्यवस्था पद्धति से होता है। प्रबुद्धता मानवीयता पूर्ण व्यवहार रूप में स्पष्ट होता है। इसकी चरितार्थता अर्थात् सर्वसुलभता ही सर्वमंगल नित्य शुभ है।

**“विधि विहित जीवन यापनाधिकार ही प्रत्येक मानव का मौलिक अधिकार है।”** मौलिकता से परिपूर्णता ही मौलिक अधिकार है। मानव में मानवीयता पूर्ण क्षमता ही मौलिकता है। मानव के मौलिक अधिकार का प्रयोग व्यक्ति के आचरण एवं व्यवहार, परिवार के सहयोग एवं सहकार, समाज के प्रबोधन एवं प्रोत्साहन, राष्ट्र के संरक्षण एवं संवर्धन तथा अंतर्राष्ट्र में उसके अनुकूल स्थिति परिस्थिति के लिए किया गया कार्यक्रम है। संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकात्मता ही अंतर्राष्ट्र में अनुकूल स्थिति-परिस्थिति है। मानवीयता को संरक्षण एवं संवर्धनदायी विधि व्यवस्था उसके व्यवहारान्वयन योग्य व्यवस्था पद्धति एवं नीति ही अखण्ड सामाजिकता का संरक्षण एवं संवर्धनकारी तत्व है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति सभ्यता का प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन, गोष्ठी, संगोष्ठी,

आख्यान, स्पष्टीकरण एवं समीक्षात्मक कार्यकलाप ही समाज का प्रबोधन एवं प्रोत्साहन सर्वस्व है। परिवार में चारित्रिक एवं नैतिक कार्यक्रम में दृढ़ता, विश्वास एवं अवगाहन क्षमता ही व्यक्ति के आचरण एवं व्यवहार में सहयोगिता एवं सहकारिता है, जो स्पष्ट है। यही मानव जीवन चरितार्थता का स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष रूप है। यही जीवन चरितार्थता भी है। यही मानव के मौलिक अधिकार तथा उसकी उपयोगिता, उपादेयता एवं उपलब्धि है। मौलिक अधिकार का अनुष्ठान ही स्वतंत्रता का लक्षण है। इसका पालन, अनुसरण एवं अनुशीलन ही स्वतंत्रता का द्योतक है। इसी मौलिक अधिकार में स्वत्व सिद्धि होती है। यही राष्ट्र में अखण्डता एवं प्रभुसत्ता, समाज में सह-अस्तित्व, परिवार में सहकारिता एवं व्यक्ति में मौलिक अधिकार का आचरण है।

### धर्मनीति, अर्थनीति एवं राज्यनीति

यही उत्पादन, व्यवहार, विचार एवं अनुभूति पूर्णता को प्रदान करने में चरितार्थ होता है। नीति एवं व्यवस्था का मूल उद्देश्य पूर्णता से संपन्न होना और पूर्णता को प्रस्थापित, स्थापित एवं संरक्षित करना ही है। तृप्ति ही पूर्णता का द्योतक है। आयाम चतुष्टय में ही तृप्ति की चरितार्थता है। यह समृद्धि, अभय, समाधान एवं सत्य है। इनसे संपन्न होना ही जीवन तृप्ति विकास, सतर्कता, सजगता एवं भ्रम मुक्ति सिद्धि होती है। कार्यक्रम तृप्ति की अपेक्षा के अर्थ में है। उन्हें पाने के लिए ही सर्वप्रयास है। व्यवस्था-विधि, सभ्यता-संस्कृति प्रत्यक्ष रूप में प्रयास है। इसकी सफलता शिक्षा-प्रणाली एवं व्यवस्था संहिता पर निर्भर है जो मानव की ही प्रबुद्धतापूर्ण क्षमता के अनुरूप-प्रतिरूप होती है। पुनः यही शिक्षा व्यवस्थापूर्वक प्रबुद्ध जनजाति का निर्माण करने का आधार होती है। इस प्रकार प्रबुद्ध व्यक्ति के द्वारा

शिक्षा एवं व्यवस्था संहिता का उद्गमन होना, उसके व्यवहारान्वयन से प्रबुद्ध जनजाति का निर्माण होना उदितोदित क्रम से अर्थात् पुनः परिष्करण, परिमार्जन तथा अनुसंधान पूर्वक संपन्न पाया गया है। इस क्रम में गुणात्मक परिवर्तन ही अभीष्ट रहा है। मौलिक अधिकार का प्रयोग एवं व्यवहार सुलभ होना ही “नीति-त्रय” की उदात्तता है। “नीति-त्रय” संहिता के उद्गमन का मूल उद्देश्य है। इसकी सार्थकता व्यवहार में ही सिद्ध होता है। यही अखण्डता है। प्रत्येक स्तर में मौलिक अधिकार का व्यवहारान्वयन होना ही स्वतंत्रता है। यही अभयता है। जीवन मौलिकता से भिन्न नहीं है। यही सत्यता मानव को जीवन संचेतनानुक्रमानुषंगी व्यवहार करने के लिए प्रेरणा है। यही “कार्यक्रम-त्रय” के उद्गमन का मूल कारण है। जीवन कार्यक्रम विहीन नहीं है। काँक्षा सहित नियति क्रमानुषंगी प्रक्रिया ही कार्यक्रम है। क्रम केवल नियति सहज है। नियति स्वयं में विकास एवं जागृति परम्परा है। नियन्त्रित गति ही नियति है। विकास क्रम में पायी जाने वाली क्रम-प्रणाली अथवा सघन प्रणाली ही नियति-क्रम है। क्रम विकास व जागृति के अतिरिक्त प्रमाणित नहीं है। प्रामाणिकता ही विकास व जागृति की गरिमा है। यह मानव के द्वारा प्रकट होने वाली उपलब्धि है। यह केवल अनुभव, व्यवहार एवं प्रयोग ही है। कार्यक्रम ही संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था का पालनकारी है। संपूर्ण कार्यक्रम का लक्ष्य मूल्योद्घाटन एवं मूल्य वहन है। यही मानव में पायी जाने वाली मौलिकता, मूल्यांकन योग्य योग्यता एवं मूल्यानुभूति योग्य क्षमता है। इसी के निर्वाह में प्रयोग एवं व्यवहार की पाँचों स्थितियों में दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था के रूप में चरितार्थता है। संपूर्ण कार्यक्रम गुणात्मक परिवर्तन में, से, के लिए है। गुणात्मकता गुरुमूल्यन प्रक्रिया है। ऐसी गुरुमूल्यनीयता मानव जीवन में क्रियापूर्णता एवं आचरण पूर्णता पर्यन्त भावी है। मानव में गुणात्मक परिवर्तन का

परिचय उनके परस्पर व्यवहार में होता है। उत्पादन कार्य, व्यवहार कार्य से संबद्ध है ही। व्यवहार अनुभूति बिना सफल होता नहीं है। अर्थात् व्यवहार मानसिकता, व्यवस्था मानसिकता अनुभव मूलक विधि से जागृति पूर्ण स्थिति है अथवा जागृत मानव सहज मानसिकता है। अनुभूति प्रधानतः मूल्य-त्रय में, से, के लिए है। यही अनुभूति व्यवहारीयता में शिष्टता को उद्गमित करता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सभी स्तरों के प्रयोगित एवं व्यवहृत मौलिक अधिकार मानव में गुणात्मक परिवर्तन के देयी हैं। अर्थ की सदुपयोगात्मक एवं सुरक्षात्मक क्षमता ही गुणात्मक परिवर्तन का लक्षण है अन्यथा में हास अवश्यम्भावी है। मानव के विकास का देय सामाजिकता है न कि केवल विशाल उत्पादन-विनिमय। सामाजिकता के बिना मानव आश्वस्त एवं विश्वस्त नहीं है। आश्वासन एवं विश्वसन प्रदान करना ही कार्यक्रम-त्रय का उद्देश्य है। इसकी पराभवता संस्कृति एवं सभ्यता को स्थापन-प्रस्थापन एवं संरक्षण-संवर्धन करने में असमर्थता के रूप में स्पष्ट होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि मानव का सर्वोच्च आयाम जो अनुभव है प्रधानतः उसी से प्रमाणित कार्यक्रम-त्रय को सर्वसुलभ बनाने पर ही मानव जन जाति को अनुभव के लिए अनुगमन कराने में समर्थ होता है। प्रमाण सिद्ध कार्यक्रम ही मानव को प्रमाणित बनाने में समर्थ होता है। प्रमाण अनुभव, व्यवहार एवं प्रयोग से अधिक नहीं है। **आर्थिक कार्यक्रम** को प्रयोग प्रमाण, सुरक्षात्मक कार्यक्रम को व्यवहार प्रमाण तथा सदुपयोगात्मक कार्यक्रम को अनुभव प्रमाण प्रधानतः सिद्ध करता है जबकि मूलतः ये तीनों कार्यक्रम मूल्यों पर ही आधारित है। आर्थिक कार्यक्रम शुद्धतः उत्पादन पर आधारित है। उत्पादन का प्रयोग सिद्ध होना अनिवार्य है। प्रयोग सिद्ध पद्धति के बिना उत्पादन-विनिमय सफल नहीं होता जो प्रसिद्ध है। **राजनैतिक कार्यक्रम** शुद्धतः अर्थ की सुरक्षा पर आधारित है। यही उसका लक्ष्य

एवं कार्यक्रम भी है। अर्थ जो व्यवहार एवं व्यवहारिकता है उसी का संरक्षण होना है। परस्पर मूल्यों का आदान-प्रदान होना सर्व देशकाल एवं जन-जाति में दृष्टव्य है। यही व्यवहार है। इसी में मानव, प्रत्येक मानव अपनी व्यवहार-क्षमतापूर्वक त्रिमूल्यों का आदान-प्रदान करने में सीमित है। इससे अधिक व्यवहार सीमा नहीं है। इन्हीं “मूल्य-त्रयों” का शोषण, वंचना, प्रवंचना, द्रोह एवं विद्रोह न होने के लिए राज्यनैतिक कार्यक्रम है। इसे चरितार्थ करना ही उसकी सफलता है। सफलता के लिए ही कार्यक्रम को प्रभावशील किया जाना प्रसिद्ध है। तन-मन-धन से अधिक अर्थ मानव में नहीं है। ये क्रम से शिष्ट मूल्य, स्थापित मूल्य एवं वस्तु मूल्य ही है। मानव ही मूल्यों को धारित एवं उद्घाटित करता है। यही सत्यता उसकी सुरक्षा की अनिवार्यता है जो अपरिहार्य है। **धर्मनैतिक कार्यक्रम** पूर्णतया अर्थ के सदुपयोग पर आधारित है। अर्थ का सदुपयोग परम्परा स्वयं में धर्मनीति है। यह प्रधानतः अर्थ के उपयोग, सदुपयोग एवं वितरण की प्रक्रिया से संबद्ध है। वस्तु मूल्य का आदान-प्रदान वस्तु व सेवा के रूप में, शिष्ट मूल्य का आदान-प्रदान मुद्रा-भंगिमा व अंगहारपूर्वक वस्तु के अर्पण एवं सेवा के रूप में तथा स्थापित मूल्य का आदान-प्रदान शिष्ट मूल्य सहित व्यंजनीयता के रूप में है। प्रत्येक मूल्य व्यंजनीयता से संबद्ध है ही। व्यंजनीयता ही मानव में तादात्म्य प्रक्रियानुषंगिक शिष्टता को प्रकट करती है। शिष्टता में वस्तु मूल्य समर्पित है ही। इस विश्लेषण से यह निर्णय स्पष्ट होता है कि स्थापित मूल्यों के आनुषंगिक शिष्ट मूल्य एवं शिष्ट मूल्यों के आनुषंगिक वस्तु मूल्य का प्रत्येक संबंधों में व्यवहृत किया जाना धर्मनैतिक कार्यक्रम है। यही विशुद्ध रूप से मानव में वांछित सुख परिपाकात्मक मूल प्रवृत्तियों से संपन्न होता है जिसके लिए ही मानव कुल तृषित है।

## 11

## पांडित्य ही मनुष्य में विशिष्टता हैं।

अनुभव योग्य क्षमता ही पांडित्य का प्रधान लक्षण है। यही मूल्यों सहित विशिष्टता को प्रकट करता है। ऐसी क्षमता जागृति सहज परम्परा में विधिवत् निःसृत वास्तविकता है। प्रबुद्धता ही प्रमाण को प्रस्तुत करता है या प्रमाण प्रबुद्धता की निष्पत्ति है। संपूर्ण मूल्य अनुभव से प्रमाणित होते हैं। प्रत्येक मूल्यवत्ता स्वयं में स्वभाव है। यही स्थिति या स्थितिवत्ता है। स्थिति ही प्रकटन है। प्रकटन ही दृश्य है। दर्शन-क्षमता के अनुसार दृश्य का दर्शन होना प्रसिद्ध है। यही मूल्यांकन-प्रक्रिया है। दर्शन-क्षमता ही मूल्यांकन-प्रक्रिया का मूल तत्व है। यही स्थितिवत्ता की व्याख्या एवं विश्लेषण, प्रयोजन की अपेक्षा में होता है। मानव के लिए अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष से अधिक प्रयोजन नहीं है। इन प्रयोजनों का वरीयता क्रम मोक्ष, धर्म, अर्थ एवं काम है। इसी क्रम से सिद्धि, प्रतिबद्धता, प्रतीति एवं भास है। सिद्धि केवल सुख है, जिसकी चार स्थितियाँ प्रसिद्ध हैं जो सुख, शांति, संतोष एवं आनंद है। इन्हीं के प्रति प्रतिबद्धता, प्रतीति एवं भास होना मानव में प्रसिद्ध है। अनुभूति ही भ्रम मुक्ति है। यह अतिमानवीयता पूर्ण जीवन में चरितार्थ होता है। मानवीयतापूर्ण जीवन में धर्म के प्रति प्रतिबद्धता होती है। यही समाज गठन का मूल तत्व है। यही स्वधर्मीयता का अनुभव करने एवं प्रसारण करने के लिए बाध्यता है। यही बाध्यता आचरण एवं व्यवहारपूर्वक संस्कृति व सभ्यता को व्यक्त करती है। प्रतिबद्धता पूर्वक ही मूल्यानुभूति होना पाया जाता

है। स्थितिवत्ता का पूर्ण विश्लेषण ही मूल्यानुभूति है। मूल्यानुभूति ही निर्वाह क्षमता है। यह क्षमता ही प्रेरणा है। यही प्रेरणा व्यंजनोत्पादी प्रक्रिया है। इसके फलस्वरूप कार्यक्रम निष्पन्न होता है। नीतित्रय से अधिक कार्यक्रम नहीं है। इसके विधिवत् ज्ञानवश मानव, मानव के साथ व्यवहार करने के लिए तत्पर होता है। साथ ही व्यवहार गति में आवश्यकीय एवं अनिवार्य साधनों से संपन्न होने के लिए बाध्य होता है। फलतः शिष्ट मूल्य का प्रयोजन व वस्तु मूल्य का उपयोग सिद्ध होता है। यही समग्र कार्यक्रम का मूल कारण है। अनुभव में क्रम का विश्लेषण होता है। कारण-गुण-गणित से निर्णय होता है। उपलब्धि से ही क्रम एवं कार्यक्रम की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। क्रम ही विश्लेषण एवं उपलब्धि ही अनुभूति है। मूल्यत्रय से अधिक उपलब्धि नहीं हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव में विशिष्टता केवल अनुभव योग्य क्षमता ही है। यही गुणात्मक परिवर्तन का लक्ष्य एवं उपलब्धि है। लक्ष्य एवं उपलब्धि के मध्य में कार्यक्रम समाया है। प्रत्येक उपलब्धि कार्यक्रम पूर्वक ही उपलब्धि होती है। यह गुरु मूल्यन अर्थात् गुणात्मक परिवर्तन प्रक्रिया से सिद्ध होता है। यही प्रत्येक मानव का अभीष्ट है। प्रबुद्धता पर्यन्त विचार, व्यवहार, उत्पादन, उपयोग, सदुपयोग एवं प्रयोजनशीलता प्रक्रिया में गुणात्मक परिवर्तन भावी है। इसी कारणवश संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन एवं परंपरा अवश्यंभावी है। इन सभी का गुणात्मक परिवर्तन ही पाँचों स्थितियों में गुणात्मक परिवर्तन है। इन सबकी गुरु मूल्यनीयता का अंततोगत्वा अनुभव योग्य क्षमता में समाहित रहता है। यही सभी स्तर पर प्रामाणिक जीवन का आधार है। इसी आधार पर सार्वभौमिकता सिद्ध होती है। प्रमाण का विरोध स्वीकार्य नहीं है। प्रमाण विफल नहीं होता है।

“विधि ही विधान; विधान ही विज्ञान व विवेक; विज्ञान व विवेक ही निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य; निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य ही विचार, इच्छा एवं संकल्प; विचार, इच्छा एवं संकल्प ही समाधान एवं अनुभूति; समाधान एवं अनुभूति ही उत्पादन, व्यवहार एवं व्यवस्था; उत्पादन, व्यवहार एवं व्यवस्था ही समृद्धि एवं सह-अस्तित्व; समृद्धि एवं सह-अस्तित्व ही सामाजिकता; सामाजिकता ही अभय; अभय ही अनुभूति; अनुभूति ही प्रमाण; प्रमाण ही प्रबुद्धता; प्रबुद्धता ही विधि है।” विचार गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक ही प्रबुद्धता को प्रकट करता है। वास्तविकताओं के दर्शनपूर्वक, पूर्णतया स्वीकृति पर्यन्त विचार में गुणात्मक परिवर्तन भावी है।

## समाज संरचना का आधार “मूल्य-त्रय” ही है ।

“मूल्य-त्रय” की एकसूत्रता अखण्ड सामाजिकता के लिए अनिवार्य है। व्यवहार एवं उत्पादन के मध्य में रिक्तता नहीं है। इन दोनों की संयुक्त स्थिति मानव जीवन में दृष्टव्य है। व्यवहार, उत्पादन के लिए प्रेरणा है। व्यवसाय उत्पादन के लिए साधन है। व्यवहार एवं उत्पादन में आश्वस्त एवं विश्वस्त होना तथा उसकी अक्षुण्णता या परम्परा का सुदृढ़ होना ही समाज एवं सामाजिकता की उपलब्धि है। व्यवहार एवं उत्पादन की सफलता क्रम से अनुभूति एवं समाधान का प्रकटन है। मानव में प्रत्येक असफलता को सफलता में परिणत करने की कामना पायी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति में, से, के लिए सामाजिक संरचना में भागीदारी करने का अवसर समान है। उसके योग्य क्षमता में वैविध्यता ही शिक्षा एवं व्यवस्था से परिमार्जित एवं नियंत्रित होने के लिए प्रस्तुत होता है। समाज संरचना का प्रत्यक्ष रूप व्यवहार एवं उत्पादन ही है। उत्पादन विनिमय अभीप्सा, व्यावहारिक अभीष्ट मानव मात्र में समान है। अवसर एवं साधन की विषमता ही उनमें वैविध्यता है। उनमें जो वैविध्यता है, वही प्रकटन में वैविध्यता है। यही परस्परता में वैविध्यता है। मानव में मूलतः अभीप्सा एवं अभीष्ट साम्य होने के कारण समाज संरचना के आधार में स्थिरता पाया जाता है। यही सत्यता आशा, आकाँक्षा एवं संकल्प को उद्गमित कराती है, जिससे समुचित एवं संतुलित समाज संरचना सिद्ध हो सके। यही चिंतन परम्परा का आधार एवं स्रोत है। संतुलित समाज संरचना का

प्रत्यक्ष रूप व्यवहार एवं उत्पादन की अविभाज्यता है। उत्पादन शिक्षा एवं उसका संरक्षण जितना महत्वपूर्ण है उससे अत्यधिक व्यवहार शिक्षा एवं उसका संरक्षण महत्वपूर्ण है। “व्यवहार, उत्पादन के लिए प्रेरणा है। उत्पादन, व्यवहार के लिए साधन हैं।” यही वास्तविकता है। व्यवहार शिक्षा में अपूर्णता ही उत्पादन-विनिमय उपलब्धियों की अपव्ययता है। मानव का अपव्ययतापूर्वक सामाजिक सिद्ध होना संभव नहीं है। इन वास्तविकताओं के अतिरिक्त वस्तु मूल्य से शिष्ट मूल्य एवं शिष्ट मूल्य से स्थापित मूल्य वरीय है ही। स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य व वस्तु मूल्य समर्पित होता है न कि वस्तु व शिष्ट मूल्य में स्थापित मूल्य। इसका कारण केवल “गुरु मूल्य में लघु मूल्य का समाना ही है।” व्यवहार शिक्षा की प्रधान उपलब्धि स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य का एवं शिष्ट मूल्य में वस्तु मूल्य का नियोजन होना ही है। ऐसी योग्यता की सर्वसुलभता ही शिक्षा है। मानव की परस्परता में स्थापित मूल्य के निर्वहन, शिष्ट मूल्य के व्यवहारान्वयन एवं वस्तु मूल्य के क्रियान्वयन योग्य योग्यता की स्थापना ही समाज-संरचना का अभीष्ट है, जिससे ही प्रत्येक मानव आश्वस्त एवं विश्वस्त होता है। ऐसी उपलब्धि पाँचों स्थितियों के संयुक्त प्रयास का योगफल है जिससे दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था की एकात्मकता एवं एकसूत्रता ही समाज संरचना है। उत्पादन-विनिमय व्यवस्था से अधिक उत्पादन व व्यवहारिक विश्वास से समृद्धि भाव सिद्ध होता है। यही समृद्ध परम्परा एवं प्रमाण है। समृद्ध परम्परा उत्तरोत्तर समृद्धि एवं समृद्धि में विपुलता को प्रमाणित करता है। यही लोक वाँछा है।

मानव का सामाजिकता में ही संयत होना प्रमाणित है। औचित्यता में दृढ़ता ही संयमता है। गुणात्मक परिवर्तन, सदुपयोग

एवं सुरक्षा के लिए प्रेरणा ही औचित्यता है जो मानवीयता स्पष्ट एवं व्यवहार सुलभ होता है। उत्पादन व्यवहार में, व्यवहार विचार में, विचार अनुभूति में संयत होता है। ये चारों आयाम प्रत्येक मानव में समाहित हैं। संयमता में अतिवाद एवं रहस्यता का अत्याभाव होता है। अतिवाद एवं रहस्यता की पारस्परिकता है। यह अविद्या का द्योतक है। मानवीय अधिकार योग्य विकास का अभाव ही अविद्या है। अर्थात् मानवीयतापूर्ण जीवन के लिए अक्षमता, अयोग्यता एवं अपात्रता ही अजागृति है। समाधान पूर्ण व्यवहार व आवश्यकता से अधिक उत्पादन सीमान्तवर्ती शिक्षा एवं व्यवस्था मानव जीवन समग्र के लिए पर्याप्त सिद्ध होती है। अपर्याप्त को पर्याप्त समझना ही अविद्या का लक्षण है।

**“जो जैसा है उसको उससे अधिक, कम या न समझना ही अविद्या है।”** जो जैसा है उसे वैसा ही समझ लेना विद्या है। **“जिसको जो समझना है उसका पूर्ण विश्लेषण हो जाना ही समझना है।”** मानव में ही विश्लेषण-क्षमता का उत्कर्ष होना पाया जाता है। विद्या से परिपूर्ण मानव मानवाधिकार सम्पन्न होता है। तभी वह स्वभावतः सामाजिक होता है। अविद्या पूर्वक सामाजिक होना संभव नहीं है। विद्या एवं अविद्या का प्रकटन चैतन्य इकाई में होता है। यही उसके जागृति का परिचय है। चैतन्य क्रिया में ही गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक विद्या की अभिव्यक्ति होती है। इसी सत्यतावश गुणात्मक परिवर्तन के लिए व्यष्टि एवं समष्टि में प्रयास होता है। गुणात्मक परिवर्तन क्रम ही समाधान एवं अनुभूति को प्रकट करता है। ऐसा गुणात्मक परिवर्तन चैतन्य इकाई में ही होता है। इसे पाने के लिए ही अर्थात् इसे सर्वसुलभ बनाने के लिए ही समाज-संरचना का कार्यक्रम, नीति, पद्धति, प्रणाली को प्रमाण पूर्वक स्थापित किया

जाता है। पूर्णता के लिए अथवा सम्यकता के लिए की गई रचना ही संरचना है। रचना का तात्पर्य लक्ष्य के अर्थ में उपलब्ध वस्तु, स्वत्व एवं शक्तियों का संयोजन करने से है। पूर्णता चैतन्य प्रकृति में ही प्रकट होता है। ज्ञानावस्था की इकाई पूर्णता के लिए निकटवर्ती, अतिनिकटवर्ती या तटवर्ती के रूप में दृष्टव्य है। चैतन्य क्रिया में क्रियापूर्णता एवं आचरणपूर्णता होना पाया जाता है। ऐसी पूर्णता को पाने के लिए ही समाज-संरचना का होना उसकी चरितार्थता का द्योतक है।

**“आवश्यकता, अनिवार्यता, अपरिहार्यता ही मानव में मूल्यग्राही एवं मूल्यप्रदायी क्षमता को उत्पन्न करती है।”** मूल्यग्राही क्षमता का आरंभ जड़ प्रकृति में भी दृष्टव्य है। मूल्यप्रदायी क्षमता केवल चैतन्य प्रकृति में ही स्पष्ट होता है। जीव प्रकृति में ममता की अभिव्यक्ति विशेषकर मातृपक्ष से हुई है। प्रत्येक जीव अपनी संतान को किसी आयु सीमा तक संरक्षण एवं पुष्टि प्रदान करता देखा जाता है। यही ममत्व की मौलिकता है। प्राणावस्था एवं पदार्थावस्था में मूल्य प्रदायी क्रिया अदृष्ट है। चैतन्य प्रकृति में विशेषकर मानव में मूल्यग्राही एवं मूल्य प्रदायी क्षमता का प्रकटन हुआ है। अपेक्षाकृत अधिक मूल्य ग्रहण एवं कम मूल्य प्रदान करने तक मानव मानवीयता से संपन्न नहीं है। यह लक्षण अमानवीयता में दृष्टव्य है। मानवीयता में मूल्य ग्रहण एवं मूल्य प्रदान का संतुलन अथवा मूल्य प्रदान की अधिकता पायी जाती है। अतिमानवीयतापूर्ण जीवन में अपेक्षाकृत कम मूल्य ग्रहण एवं अधिक मूल्य का प्रदान स्वभाविक होता है। यह जागृति सहज परम्परा में पायी जाने वाली निष्पत्ति है। इस विश्लेषण से भी यह स्पष्ट होता है कि मानव मानवीयता में मूल्य ग्राही एवं मूल्य प्रदायी कार्यक्रम को समाधानपूर्वक



सम्पन्न करने का अधिकारी है। इस अधिकार का पाँचों स्थितियों दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था के रूप में चरितार्थ होना ही उपलब्धि है। यह उपलब्धि स्वयं में अखण्डता है। अखण्डता स्वयं में सामाजिकता एवं अभय है। यह समष्टि प्रयास का योगफल है। समष्टि एक ईष्ट में है ही। उसके योग्य कार्यक्रम संपन्न हो जाना ही उपलब्धि है। यही व्यवहारिक विश्वसन का प्रत्यक्ष रूप है। उत्पादन विनिमय आश्वासन, उसके योग्य समुचित शिक्षण, साधन एवं विनिमय सुलभता का योगफल है। मानव, मानव-प्रकृति के साथ स्थापित मूल्यों का निर्वाह शिष्ट मूल्यों सहित मानवीयता पूर्ण जीवन में करता है। यह प्रमाण सर्वदा दृष्टव्य है। आवश्यकतापूर्वक ही कला मूल्य एवं उपयोगिता मूल्य की स्थापना होती है। साथ ही उपयोग, वितरण और सेवा, समर्पण तथा ग्रहण क्रिया में वे प्रयोजित होते हैं। आवश्यकता मानवीयता में संयत होना पाया जाता है। इसी में अपव्यय का अभाव होता है। अपव्यय ही मानव जीवन में परम घातक प्रक्रिया है। अपव्ययता से अपव्यययी का अनिष्ट होना भावी, व्यक्ति में जागृति परिवार के लिए इष्टकारी, परिवार का विकास एवं जागृति वर्ग के लिए इष्टकारी, वर्ग का विकास एवं जागृति राष्ट्र के लिए इष्टकारी तथा राष्ट्र का विकास एवं जागृति अंतर्राष्ट्र के लिए इष्टकारी एवं स्वीकार्य है। इसके साक्ष्य में यह देखा जाता है कि एक व्यक्ति द्वारा किया गया अविष्कार अनेक से स्वीकार्य होता है, जबकि अनेक से किया गया अपराध एक को भी स्वीकार कराने में समर्थ नहीं रहा। वे स्वयं उसको अस्वीकार किए रहते हैं। अपव्यय एवं अपराध मानव की वांछित उपलब्धि नहीं है। यही सत्यता बाध्य करती है कि मानव मानवीयतापूर्ण जीवन यापन करें।

मानवीयतापूर्ण जीवन में ही औचित्यता चरितार्थ होती है।

गुणात्मक परिवर्तन के लिए औचित्यता का निर्णय एवं उसके अनुसार आचरण अनिवार्य है। सम्पूर्ण प्रकार के अपव्यय मानवीयतापूर्ण जीवन में समाप्त हो जाते हैं। फलतः भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान है। अपव्यय एवं अज्ञान के बिना मर्ध्यता एवं समस्या नहीं है। मर्ध्यता का तात्पर्य असमृद्धि एवं अभावता से है। वर्तमान में मानव के लिए आवश्यकीय वस्तुओं का निर्माण क्षमता उनमें पर्याप्तता के निकटवर्ती है। केवल व्यवहारिक आकाँक्षा का पूर्ण होना ही समाज वैभव सिद्धि है। सामाजिक वैभवता बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि ही है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन ही भौतिक समृद्धि का प्रत्यक्ष रूप है। यही समाधानात्मक भौतिकवाद का आधार है। स्थापित संबंधों का विधिवत् निर्वाह ही व्यवहार आकाँक्षा का आशय है। यही व्यवहारात्मक जनवाद का सूत्र है। स्थापित मूल्यों की अनुभूति योग्य क्षमता सम्पन्नता ही या सम्पन्न कार्यक्रम ही अनुभवात्मक अध्यात्मवाद का सूत्र है। अनुभव, समाधान, व्यवहार एवं समृद्धि मानव जीवन के अविभाज्य भाग हैं। इनमें से किसी एक का अभाव होने पर जीवन गति कुण्ठित होना अथवा इनकी परस्परता में असंतुलन होना पाया जाता है।

“**आवश्यकताएं परिवार मूलक हैं।**” समाज के अभाव में आवश्यकता का उद्गम प्रमाणित नहीं है। एकाकी मानव जीवन का इतिहास एवं चरितार्थता नहीं है। मानव जीवन के इतिहास एवं चरितार्थता का समाज एवं सामाजिकता की अपेक्षा में अध्ययन होता है। एक से अधिक होने की स्थिति में परस्पर अपेक्षा का उद्गमन संभव होता है। संपूर्ण अपेक्षाएं परस्परता में, से, के लिए ही ज्ञातव्य एवं दृष्टव्य हैं। व्यवहार का अभाव उसी भूमि पर होगा जहाँ मानव का अभाव है। विकास क्रम में इस धरती पर भी मानव का अभाव रहा ही होगा। साथ ही यह कल्पना भी होती है कि जब कभी भी इस

पृथ्वी पर मानव का अवतरण हुआ, एक से अधिक हुआ है। यह वास्तविकता स्पष्ट है कि एक से अधिक एकत्रित हुए बिना मानव परम्परा सिद्ध नहीं होती। इस श्रृंखला में यह निश्चय होता है कि मानव जीवन में आवश्यकताएं उनके संबंध एवं संपर्क की विशालता के अनुरूप पायी गई हैं। उसी की पूर्ति हेतु समस्त योजना-परियोजना दृष्टव्य है। ऐसी आवश्यकताएं व्यवहारिक एवं वस्तु मूल्यों से लक्षित हैं, जिनमें से किसी एक का अपूर्ण होना दूसरे के सदुपयोग व सुरक्षा में हस्तक्षेप होना है। व्यवहारिक प्रमाणों में अंतर्विरोध नहीं है। प्रमाण ही परस्पर विरोध पर विजय पाता है। इसी सत्यता के आनुषंगिक व्यवहारिक अनुसंधान एवं उत्पादन संबंधी अविष्कार होते गए हैं। प्रमाण विहीन स्थिति में ही मानव की परस्परता में विरोध होना पाया जाता है, भले ही वह व्यवहारिक या उत्पादन संबंधी क्यों न हो। विरोध पर विजय ही गुणात्मक परिवर्तन का प्रधान लक्षण है। जीवन समग्र का प्रमाणित हो जाना ही संपूर्ण विरोध का निराकरण है। प्रमाण विहीन ऐच्छिकताएं काल्पनिक सुविधाओं पर आधारित होनी स्वभाविक है। यही वैचारिक वैविध्यता का कारण है और मानव में परस्पर मतभेद है। यह क्रम से वर्ग-संघर्ष एवं युद्ध है, जो स्पष्ट है। इस तथ्य के आधार पर यह निष्कर्ष मिलता है कि जीवन समग्र का अध्ययन ही ऐसी समस्याओं का समाधान है। मानव जीवन समग्रता, आयाम चतुष्टय की एकात्मकता में तथा पाँचों स्थितियों में दश सोपानीय व्यवस्था की एकरूपता में प्रमाणित है। यही मानव-जीवन परम्परा का प्रत्यक्ष रूप है। यही क्रम से संस्कृति एवं सभ्यता है। इसी सीमा में संपूर्ण परस्परताएं विश्लेषित हैं। इन सभी संबंधों एवं संपर्कों का निर्वाह ही मानव-परम्परा की ख्याति है। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर स्पष्ट होता है कि मूल्यों से अधिक अनुभव करने के लिए वस्तु नहीं है तथा मूल्यों से अधिक विशालता नहीं है। सत्तामयता से

अधिक व्यापकता नहीं है। सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति से अधिक विकास एवं जागृति के लिए वस्तु नहीं है। विश्लेषण प्रकृति की सीमा में हुआ है। यह उसकी उपयोगिता एवं उपादेयता को स्पष्ट किया है। गुरुमूल्य के बिना लघुमूल्य का नियंत्रण नहीं है। इसे सत्ता में संपृक्त प्रकृति ने प्रमाणित किया है। इसी तारतम्य में शिष्ट मूल्य का वस्तु मूल्य से गुरु मूल्य होना एवं शिष्ट मूल्य से स्थापित मूल्य का गुरुमूल्य होना प्रमाणित है। आवश्यकताओं के नियंत्रण, संयमन एवं संरक्षण की अपेक्षा में संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकरूपता का होना आवश्यक, अनिवार्य एवं अपरिहार्य है। इसके बिना सर्वमंगल, नित्य शुभ, जीवन सफल एवं भौमिक स्वर्ग संभव नहीं है।

**“भोगों में संयमता के लिए पुरुषों में यतित्व एवं स्त्रियों में सतीत्व अनिवार्य है।”** यतित्व का तात्पर्य यत्नपूर्वक तरने से तथा सतीत्व का तात्पर्य सत्वपूर्वक तरने से हैं। जागृति की ओर श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक यत्न-प्रयत्नशील होना ही यतित्व का लक्षण है। विकास एवं जागृति में निष्ठा एवं विश्वास सम्पन्न होना ही सतीत्व का प्रधान लक्षण है। विकास एवं जागृति ही जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का अभीष्ट है। नियति क्रमानुषंगिक ही यतित्व एवं सतीत्व की अनिवार्यता, उपादेयता, उपयोगिता एवं अपरिहार्यता स्पष्ट होती है। गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक क्रियापूर्णता एवं आचरणपूर्णता की उपलब्धि जीवन चरितार्थता है। यही श्रेय, निःश्रेय एवं यतित्व तथा सतीत्व की उपलब्धि है। प्रत्येक मानव में यतित्व एवं सतीत्व के प्रति वांछनीय एवं आवश्यकिय निष्ठा का होना ही अभ्युदय का लक्षण है। यह शिक्षा-दीक्षा-संस्कार पूर्वक सफल होता है। यह जागृति की ओर तीव्र निष्ठा का प्रतीक है, जिसका प्रत्यक्ष रूप गुणात्मक परिवर्तन है। मानवीयता के अनन्तर गुणात्मक परिवर्तन देव मानवीयता एवं दिव्य

मानवीयता के रूप में प्रकट होता है। मानव संस्कृति यतित्व एवं सतीत्व का लक्षण है। सतीत्व एवं यतित्व मानव संस्कृति के लक्षण है। यतित्व एवं सतीत्व पूर्ण जीवन में तन-मन-धन के अपव्यय का अत्याभाव होता है। सदुपयोगिता ही जीवन का प्रधान कार्यक्रम है। अपव्यय एवं सद्व्यय के मूल में विचार का होना पाया जाता है। मानवीयता की अपेक्षा में सद्व्ययता एवं अपव्ययता का निर्णय होता है। सदुपयोग प्रत्येक मानव सहज अपेक्षा है। मानवीयता में ही यह चरितार्थ होता है। यही मानवीय परम्परा में अक्षुण्णता को स्थापित करता है। मानवीयता पूर्ण परम्परा का पराभव नहीं है। अमानवीयता पराभव से मुक्त नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यतित्व एवं सतीत्व के मूल में शुद्धतः तन-मन-धनात्मक अर्थ के सदुपयोग में निष्ठा एवं विश्वास ही है। यही सत्यता मानवता के वैभव को कीर्तिमान सिद्ध करता है। इसका सर्वसुलभ हो जाना ही अखण्डता है, जिसमें ही भूमि स्वर्ग, मानव देवता, धर्म सफल एवं नित्य मंगल होता है।

13

### वर्तमान में विश्वास ही अभयता है।

अभयता गुणात्मक परिवर्तन पूर्ण संस्कार की परिणति है। गुणात्मक परिवर्तन जागृति क्रम में ही होता है। यही क्रांति है। क्रांति ही संक्रमण प्रक्रिया है। संक्रमण प्रक्रिया मानव के लिए अमानवीयता से मानवीयता एवं मानवीयता से अतिमानवीयता में ही है। मानव मानवीयतापूर्ण जीवन में ही अभयता को प्राप्त करता है। मानवीयतापूर्ण सामाजिक जीवन में ही मानव में निहित अमानवीयता के भय से मुक्ति है। मानवीयता में अमानवीयता का अत्याभाव होता है। अमानवीयता में मानवीयता का भास, आभास एवं प्रतीति होती है। यही वास्तविकता अमानवीयता से मानवीयता में संक्रमण एवं संभावना को स्पष्ट करती है। मानवीयता में अमानवीयता का अत्याभाव होना ही मानवीयता की क्षरण विहीनता को सिद्ध करता है। जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति “पूर्णता-त्रय” में, से, के लिए ही परिणामशील, श्रमशील एवं गतिशील है। प्रकृति की गम्यता अर्थात् विकास एवं जागृति की विशालता पूर्णता-त्रय से अधिक कुछ भी नहीं है। चैतन्य जीवन का आरम्भ गठनपूर्णता से होता है। यही गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक मानव पद को पाता है। मानव पद में ही शेष दो पूर्णता की संभावना स्पष्ट हुई है। इसमें से क्रियापूर्णता के अनन्तर आचरण पूर्णता सिद्ध होती है। क्रियापूर्णता के बिना मानव आश्वस्त, विश्वस्त नहीं होता है क्योंकि अमानवीयता में परस्पर उसको भय होता ही है क्योंकि हीनता, दीनता एवं क्रूरतापूर्वक मानव का विश्वस्त

होना प्रमाणित नहीं है। विश्वास एवं अभयता अन्योन्याश्रित तथ्य हैं। अभयता के बिना विश्वास एवं विश्वास के बिना अभयता सिद्ध नहीं होती है। अमानवीयता का स्वभाव ही भय, प्रलोभन व आस्था है। मानवीयता का स्वभाव ही मानव का विश्वास है। “स्वभाव का अभाव नहीं है।” स्वभाव ही धर्मीयता को प्रकट करता है। संपूर्ण चैतन्य प्रकृति स्वभाव एवं धर्म को प्रकट करती है। जीवावस्था में स्वभाव का प्रकटन हुआ है। मानव में स्वभाव एवं धर्म का प्रकटन होता है या मानव स्वधर्मीयता को प्रकट करने के लिए बाध्य है। अभयता ही सुख, सुख ही विश्वास, विश्वास ही साम्य मूल्य, साम्य मूल्य ही पूर्ण मूल्यानुसंधान, पूर्ण मूल्यानुसंधान ही पूर्ण मूल्यानुभूति, पूर्ण मूल्यानुभूति ही पूर्ण सामाजिकता एवं पूर्ण सामाजिकता ही अभयता है। मानवीयतापूर्ण जीवन में अभय सिद्धि होती है। अभयता के बिना मानव की स्वधार्मिक या स्व धर्मात्मिक सुख धर्मीयता का प्रसारण या प्रकटन नहीं होता है। जिसका जो अनुभव करता है उसी का वह प्रकटन करता है। जिसका जो प्रकटन करता है उसी का प्रसारण होता है। जन-जाति एवं शिक्षा तथा व्यवस्था पद्धति में मानवीय तत्वों का समावेश हो जाना ही अभयता एवं विश्वास का सर्वसुलभ होना है, जिससे ही भूमि स्वर्ग, मानव देवता, धर्म सफल एवं नित्य शुभ होता है।

अभ्यास लक्ष्य की अपेक्षा में ही सम्पन्न होता है। मानव जीवन का लक्ष्य सुख, शान्ति, संतोष एवं आनन्द ही है। संपूर्ण वस्तु मूल्य भी इसी में प्रायोजित होते हैं। सुख, शांति, संतोष एवं आनन्द मूल्य-त्रयानुभूति के प्रमाण हैं। अनुभूति सत्तामयता एवं स्थापित मूल्यमयता में होती है। यही आप्लावन, आह्लाद, उत्साह एवं प्रसन्नता है। स्थापित मूल्यानुभूति ही अंततोगत्वा प्रेममयता अनुभूति

है। अस्तु, अनुभवमयता ही प्रेममयता, प्रेममयता ही जागृति पूर्ण जीवनमयता, जीवनमयता ही अभ्युदयमयता, अभ्युदयमयता ही सत्यमयता में अनुभवमयता है। यही अभ्यास की चरमोपलब्धि है। संवेदनशीलता का विस्तार अर्थात् गुणात्मक परिवर्तन अनुभव योग्य क्षमता पर्यन्त होता है। ऐसी क्षमता का विकास जीवावस्था से आरम्भ होता है और दिव्य मानवीयता अवस्था में परिपूर्ण होता है। पूर्णता के प्रति जो पीड़ा है, वही संवेदना है। यही संवेदना सामाजिकता के लिए उत्प्रेरित करती है। यह उत्प्रेरणा बाध्यता में, बाध्यताएं इच्छा में, इच्छाएं तीव्र इच्छा में, तीव्र इच्छाएं संवेग में, संवेग व्यवहार एवं प्रयोग में अभिव्यक्त होते हैं। फलतः यही मानवीयता में स्थापित मूल्यों की अर्हता है। यही अर्हता क्रम से सामाजिकता का निर्वाह में स्पष्ट है और सामाजिक मूल्यों का अनुभव करता है। स्थापित मूल्यों में से प्रेम श्रेष्ठ मूल्य है। सभी स्थापित मूल्य प्रेम से संबद्ध हैं ही। प्रेम ही विशालतम प्रभावशाली मूल्य है। वह शिष्ट मूल्य पूर्वक श्रद्धा, स्नेह एवं वात्सल्य के माध्यम से अनुभवगम्य होता है जिससे ही सामाजिकता का निर्वाह, शिष्ट मूल्य की अभिव्यक्ति एवं वस्तु मूल्य का सदुपयोग होता है। यही अर्थ का सदुपयोग होने का यथार्थ रूप है। अर्थ का सदुपयोग होना सर्ववांछित तथ्य है। यह स्थापित मूल्यानुभूति पूर्वक ही संपन्न होता है। प्रेमानुभूति ही स्वतंत्रता को स्पष्ट करता है। प्रेमानुभूति के बिना स्वतंत्रता पूर्वक मानवीयता का निर्वाह करना संभव नहीं है। स्वतंत्रता जीवन सहज लक्ष्य है। “मानवीयता से परिपूर्ण होना ही स्वतंत्रता की प्रतीति, प्रेमानुभूति का भास एवं उसकी संभावना का आभास होता है।” ये ही अपनी स्पष्टतापूर्वक अनुभव में प्रमाणित होते हैं। “प्रेमानुभूति का प्रधान लक्षण अनन्यता है।” प्रत्येक मानव अपने से विकसित के साथ अनन्यता को स्थापित करने के लिए बाध्य है ही। विकसित इकाई के द्वारा अविकसित के साथ

वात्सल्यादि मूल्यानुभूति सहित शिष्ट मूल्यों की अभिव्यक्ति ही उसका स्वभाव है। “श्रद्धा एवं विश्वास में अनुभूति प्रेमानुभूति योग्य क्षमता को प्रदान करता है।” मानवीयतापूर्ण जीवन में प्रत्येक मानव में, से, के लिए विश्वास का अनुभव करने योग्य क्षमता स्थापित होता है। मानवीयता पूर्ण जीवन में सर्व प्रथम अनुभव में आने वाला स्थापित मूल्य विश्वास ही है। द्वितीय मूल्य श्रद्धा है। इन दोनों का योगफल ही क्रम से प्रेमानुभूति पर्यन्त क्षमता को जागृत करता है। “स्थापित मूल्यानुभूति क्रम में ही प्रेमानुभूति है।” यह क्रम से ममता, स्नेह, विश्वास, कृतज्ञता, वात्सल्य, सम्मान, गौरव, श्रद्धा एवं प्रेम है। सामाजिकता में परिपूर्णता ही प्रेमानुभूति योग्य क्षमता है। स्वतंत्रतापूर्वक सामाजिकता का आचरण ही सामाजिकता की परिपक्वता है। स्वतंत्रता ही प्रेमानुभूति का प्रधान लक्षण है। “प्रेमानुभूति में वैविध्यता नहीं है।” अन्य सभी स्थापित मूल्य प्रेमानुभूति में, से, के लिए सोपान है। वस्तु मूल्य एवं शिष्ट मूल्य स्थापित मूल्य में समर्पित होने के लिए बाध्य है। अनुभव का तात्पर्य क्रम पूर्वक प्राप्तोत्पत्ति ही है। मानव में क्रमानुभूति केवल “मूल्य त्रय” ही है। वस्तु मूल्य से शिष्ट मूल्य वरीय, शिष्ट मूल्य से स्थापित मूल्य अति-वरीय है। स्थापित मूल्य में से प्रेम पूर्ण मूल्य है। इसी सत्यता से स्पष्ट परिज्ञान होता है कि प्रेमानुभूति के अनन्तर ही वास्तविकताएं स्पष्ट होती हैं। प्रकृति में वास्तविकताएं होती हैं। “प्रेममयता की अनुभूति कृतकृत्यता है।” और कुछ करना शेष न हो, यही कृतकृत्यता है। गुणात्मक परिवर्तन के संदर्भ में, से, के लिए ही दायित्व एवं कर्तव्य प्रमाणित होते हैं। अनुभवमय क्षमता से संपन्न होने पर्यन्त दायित्व एवं कर्तव्य का अभाव नहीं है। उसके अनन्तर वह स्वभावगत होता है। अमानवीयता से मानवीयता में अनुगमन करने के लिए नियमत्रय पूर्वक दायित्व एवं कर्तव्य प्रमाणित होता है। मानवीयता से अतिमानवीयता में अनुगमन

करने के लिए छः स्वभाव कर्तव्य एवं दायित्व को प्रमाणित करते हैं। धीरता से परिपूर्ण होना ही वीरता का होना, वीरता से परिपूर्ण होना ही उदारता का होना, उदारता से परिपूर्ण होना ही दया का होना, दया से परिपूर्ण होना ही कृपा का होना तथा कृपा से परिपूर्ण होना ही करुणा का होना प्रमाणित है।

## व्यक्तित्व और प्रतिभा की चरमोत्कर्षता में ही प्रेमानुभूति होती है।

श्रृंगार व कामुकता प्रेमानुभव करने का साधन नहीं है अथवा वे इसके लक्षण नहीं हैं। प्रेम आवेश नहीं है। प्रेम अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति एवं अव्याप्ति दोष से मुक्त है। कामुकता प्रच्छन्न रूप में आवेश है अर्थात् सम्मोहनात्मक आवेश है। “प्रेमानुभूति में तन्मयता एवं अनन्यता स्वभाव अभिव्यक्ति है।” अनन्यता ही अखण्ड सामाजिकता का द्योतक है। सामाजिकता की वास्तविकता ही अखण्डता है। प्रेमानुभूतिमयता में ही जीवन चरितार्थता एवं अभयता सिद्ध होती है। “मानव ही प्रेमी और प्रेमास्पद होने के लिए अर्ह है।” प्रकारान्तर से मानव जैसे ही प्रतीक प्रसिद्ध है। मानव ही मानव के लिए प्रेमानुभूति का सुलभ उपाय है। प्रेमानुभूति योग्य क्षमता में सामाजिकता का प्रकट होना स्वोभाविक है। स्वभाव ही इसका मूल रूप है। सामाजिकता स्वभाव में न हो, प्रेमानुभूति हो ऐसा प्रमाण नहीं है। प्रेमानुभूति पूर्ण मानव की स्वतंत्रतापूर्वक सामाजिकता की अभिव्यक्ति ही समाज के लिए उसकी उपादेयता है। प्रेमानुभूतिमयता की अभिव्यक्ति शिष्टता में अर्थात् आचरण में इंगित होती है। इंगित होना ही व्यंजना है। व्यंजना ही क्रम से भास, आभास, प्रतीति, अवधारणा एवं अनुभूति है। प्रेम दृश्य न होते हुए दृश्यपूर्वक व्यंजित होता है। यही अनन्यता की गरिमा है। अनन्यता स्वयं में दृश्य होते हुए अदृश्यात्मक प्रेममयता को व्यंजित कराती है। जैसे- अनुभव

अदृश्य होते हुए भी प्रमाण एवं परम्परा है। प्रेममयता ही मानव में अनन्यता के रूप में प्रत्यक्ष होती है। ऐसी प्रेममयता के लिए ही सम्पूर्ण प्रकार के अभ्यास होते हैं। संपूर्ण प्रकार के अभ्यास की चरमोत्कृष्ट उपलब्धि प्रेमानुभूति ही है जो पूर्णतया सामाजिक एवं व्यावहारिक है। सामाजिकता एवं व्यावहारिकता में ही मानव की यथार्थता एवं वास्तविकता स्पष्ट होती है, न कि उत्पादन में।

“प्रेम ही स्वर्गीयता का आद्यान्त आधार है।” स्वर्गीयता का प्रत्यक्ष रूप ही अनन्यता है। परस्पर मानव में अनन्यता ही अखण्डता है। मानव में अखण्डता ही स्वर्ग है। प्रेमानुभूति में ही सर्वोच्च प्रकार की सामाजिकता प्रकट होती है। सामाजिकता में ही स्वर्गानुभूति होती है। उसके अभाव में क्लेश होता है। सामाजिकता स्थापित मूल्यानुभूति एवं उसकी निरन्तरता ही स्वर्ग-स्वर्गीयता, समाधान एवं सफलता है। वस्तु मूल्य अथवा उत्पादन मानव की चरितार्थता के लिए पर्याप्त नहीं है।

“प्रेममयता की अनुभूति जीवन में पूर्णता है।” यही पूर्ण जागृति का द्योतक है। पूर्णता ही जीवन का गन्तव्य है। संज्ञानीयता का यही लक्ष्य है। प्रेमानुभूति में ही अभाव और भाव की विषमताओं का तिरोभाव होता है। तिरोभाव का तात्पर्य भाव के निरन्तरता से है, जो जागृति का सहायक है। विषय चतुष्टय ही भाव के अनन्तर अभाव में एवं अभाव के अनन्तर भाव में परिणत होते हुए देखे जाते हैं।

“प्रेमानुभूति के लिए क्रम केवल मानवीयतापूर्ण जीवन में पूर्णता को पाना ही है।” शुभकामना का उदय मानवीयता में ही प्रत्यक्ष होता है। यही प्रेमानुभूति के लिए सर्वोत्तम साधना है। शुभकामना क्रम से इच्छा में, इच्छा तीव्र इच्छा एवं संकल्प में तथा

भास-आभास प्रतीति एवं अवधारणा में स्थापित होता है। फलतः प्रेममयता का अनुभव होता है। मानव शुभ आशा से संपन्न है ही। यही अभ्यासपूर्वक क्रम से कामना, इच्छा, संकल्प एवं अनुभूति सुलभ होता है। मानव में प्रमाणित होने वाले नित्य शुभ मूल्यत्रयानुभूति ही है। चैतन्य इकाई का सर्वोच्च विकास मूल्यानुभूति योग्य क्षमता से सम्पन्न होना ही है। यह बाध्यता सत्ता में संपृक्तता है। प्रेमानुभूति ही व्यवहार में मंगलमयता को प्रकट करती है। व्यवहार में मंगलमयता का प्रत्यक्ष रूप ही अनन्यता है। ऐसी क्षमता का सर्वसुलभ होना ही लोकमंगल है। सामाजिक अखण्डता ही लोकमंगल का प्रत्यक्ष रूप है। लोक मंगल की संभावना जागृति के क्रम में सर्वसुलभ है। मानव अपने अग्रिम विकास की संभावना को अपने से निर्मित कार्यक्रम से सफल बनाता है। उसकी सफलता केवल प्रेमानुभूति पूर्ण अथवा प्रेमानुभूति योग्य कार्यक्रम में ही है।

**“प्रेमानुभूति का आधार केवल स्थापित मूल्यानुभूति ही है।”** यह चैतन्य प्रकृति के जागृति क्रम में उत्पन्न होने वाली क्षमता है। ऐसी क्षमता को पाने के लिए मानवीयता में संक्रमण आवश्यक है। मानवीयता, व्यवहार सुलभ एवं अखण्ड समाज है। व्यवहारानुषंगिक स्थापित मूल्यों का अनुभव होना प्रसिद्ध है। व्यवहार अनुभवगामी या अनुभव मूलक होता है। अनुभव, मूल्यों से अधिक होता नहीं है। संपूर्ण मूल्य स्पष्ट है। स्थापित मूल्यानुभूति क्षमता में प्रेमानुभूति होना स्वभाविक है। ऐसी क्षमता सर्वसुलभ होना ही लोकमंगल है।

**“सर्वमंगलमयता प्रेमानुभूति में ही है।”** बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि ही सर्वमंगलमयता का प्रत्यक्ष रूप है। प्रेमानुभूति में अपव्ययता की संभावना नहीं है। मानवीयता में संक्रमण

ही अपव्ययता का तिरोभाव है। मानव जीवन चरितार्थता सर्वमंगलमयता में ही है।

**“संपूर्ण योगाभ्यास की चरमोपलब्धि भी प्रेमानुभूति ही है।”** सत्य चिन्तन से भी प्रेमानुभूति होती है। प्रेमानुभूति व्यवहारिक एवं सामाजिक है। प्रेमानुभूति योग्य क्षमता अमानवीयता में व्यवहारिक नहीं है। अमानवीयता सामाजिक नहीं है इसलिए व्यवहारिक नहीं है। साथ ही मानवीयतापूर्ण जीवन में अमानवीयता संभव नहीं है।

**“प्रेमानुभूति योग्य क्षमता सम्पन्न होने के लिए शुचिता एवं गुणात्मक परिवर्तन में अनुशीलन अनिवार्य साधना है।”** सम्यकता की ओर गतिशीलता अर्थात् गुणात्मक परिवर्तन हेतु सुनिश्चित आचरण, व्यवहार एवं अर्थ का सदुपयोग ही साधना और अभ्यास है। शारीरिक स्वस्थता एवं शिष्टता का योगफल ही शुचिता है। प्रमाण-परम्परा में अनुगमन ही अनुशीलन है। जीवन ही प्रमाण-त्रय का प्रतिपादक है। प्रमाण ही जागृत मानव परम्परा है।

**“मानव के चारों आयामों का पूर्ण जागृति ही प्रेमानुभूति योग्य क्षमता है।”** यही ऐतिहासिक उपलब्धि मानव में प्रतीक्षित है। ऐसी क्षमता से सम्पन्न व्यक्तियों के योग्य कार्यक्रम ही अभ्युदय है। वह धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक कार्यक्रम ही है। ऐसे कार्यक्रम में निपुणता, कुशलता सहित मानव जीवन दर्शन की शिक्षा जो पाण्डित्य है उसका समावेश होना ही प्रेमानुभूति योग्य क्षमता का सर्वसुलभ होना है। यही सर्वमंगल कार्यक्रम है।

**“प्रेमानुभूति सम्पन्न जनमानस को उज्ज्वल करने के लिए शिक्षा की भूमिका अति महत्वपूर्ण है।”** शिक्षा ही विश्लेषण पूर्वक वास्तविकताओं पर आधारित जीवन के कार्यक्रम को स्पष्ट करती है। यही प्रत्येक मानव में पायी जाने वाली कामना

एवं उसकी आवश्यकता है। यही शिक्षा का दायित्व है, जिसके बिना मानव में अनुभव योग्य क्षमता का जागृत होना संभव नहीं है। शिक्षा व व्यवस्था ही जीवन में गुणात्मक परिवर्तन का स्रोत है। अंततोगत्वा यही अनुभव के लिए प्रेरणा है। वरिष्ठ अनुभूति प्रेमानुभूति ही है। यही पूर्णतया सामाजिक एवं व्यावहारिक है।

**“उपदेश, स्मरण, कीर्तन, संकीर्तन की चरितार्थता भी प्रेमानुभूति में ही है।”** पूर्णता से सम्पन्न जीवन की आकांक्षा मानव में प्रसिद्ध है। उसके योग्य वातावरण निर्माण करना ही सामाजिक कार्यक्रम है। यही सर्वमंगल कार्यक्रम है। यही समाधान, विश्राम एवं स्वर्ग है।

**“संपूर्ण प्रकार के संयम, तपस्या व अनुष्ठान की चरितार्थता का सार्थक फलन प्रेमानुभूति और व्यवस्था में सार्वभौमता का प्रमाण है।”** सम्पूर्ण नेतृत्व को प्रेरणा स्रोत के रूप में पहचानना आवश्यक है। स्रोत अपने में दश सोपानीय व्यवस्था और सम्पूर्ण मूल्य प्रधानतः प्रेम मूल्य का प्रमाण होना आवश्यक है। अन्यथा जो होना है वह भ्रमित संसार में स्पष्ट हो चुका है। शिक्षा, व्यवस्था, संस्कृति, सभ्यता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, नित्य-नैमित्तिक कर्म, साहित्य, कला, भक्ति, पूजा, स्तवन, गायन एवं प्रदर्शन समुच्चय की चरितार्थता और सार्थकता को भी प्रेमानुभूति और व्यवस्था में प्रमाणित होने के रूप में ही पहचाना जा सकता है। मानव की प्रत्येक क्रिया, प्रक्रिया एवं कार्यक्रम के मूल लक्ष्य से विचलित होने पर साधन ही लक्ष्य हो जाता है। फलतः दिशाविहीनता घटित होता है। फलतः असामाजिकता एवं अव्यवहारिकता पूर्ण कार्य होता है। परिणामतः संदिग्धता, सशंकता एवं भयपूर्वक वर्ग संघर्ष एवं युद्ध होता है। अस्तु, उक्त सभी प्रकार के अथक प्रयास का

प्रेममयता के अर्थ में कार्यक्रम संपन्न होना ही उसकी चरितार्थता है। मानव में चरितार्थता, सफलता एवं उज्ज्वलता उत्थान की कामना है। सुविधा के तारतम्य में उसकी व्यवहारिकता सिद्ध न होना ही दिशाहीनता है। इसका निराकरण केवल मूल्य-त्रयानुभूति ही है। प्रधानतः स्थापित मूल्यानुभूति योग्य कार्यक्रम मानवीयता में चरितार्थ होता है। उसे स्थापित, प्रस्थापित एवं आचरित करना ही समाज एवं सामाजिक संस्थाओं का आद्यान्त कार्यक्रम है। यही मानवीयता में सर्वसामान्य सुलभ उपलब्धि है। मानवीयता के बिना मानव सुखी नहीं है या मानव का सुखी होना संभव नहीं है। इसे सर्वसुलभ करने का कार्यक्रम शिक्षा में पूर्णता को स्थापित करना है। तात्पर्य उत्पादन एवं व्यवहार शिक्षा के संयुक्त अध्ययन होने से है जो विज्ञान के साथ चैतन्य पक्ष का, मानव विज्ञान के साथ संस्कार पक्ष का, दर्शन शास्त्र के साथ क्रिया पक्ष का, साहित्य के साथ तात्त्विक पक्ष का, समाज शास्त्र के साथ मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता पक्ष का, राज्यनीति शास्त्र के साथ मानवीयता के संरक्षणात्मक नीति का, अर्थशास्त्र के साथ तन-मन-धनात्मक अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षात्मक नीति पक्ष का, भूगोल और इतिहास के साथ मानव तथा मानवीयता का अध्ययन है। यही व्यवहार एवं व्यवसाय शिक्षा में संतुलन के लिए सर्वसुलभ उपाय है।



## उत्पादन एवं व्यवहारिकता अखण्ड समाज में, से, के लिए अपरिहार्य है

अखण्डता के बिना सामाजिकता नहीं है। अखण्डता के लिए व्यवहारिक विशालता व साधनों की विपुलता अनिवार्य तत्व है। साधनों की विपुलता आकाँक्षाद्वय में चरितार्थ होती है। व्यवहार की विशालता सामाजिक अखण्डता में चरितार्थ होती है। सामाजिक अखण्डता के लिए व्यवसायिक उत्पादन में विपुलता को पाना तथा उसको अक्षुण्ण बनाये रखना अनिवार्य है। वस्तु उत्पादन एवं उसकी विपुलता को संयत, नियंत्रित, प्रयोजित एवं उसका सदुपयोग करने के लिए समाज में अखण्डता सहज चेतना अपरिहार्य है। इस तथ्य से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि जो देश या वर्ग विपुल उत्पादन में सक्षम हुए हों एवं व्यवहार विशालता से सम्पन्न होना चाहते हों उनका संतुलित, समृद्ध, समाधान एवं सर्वाभीष्ट जीवन को चरितार्थ करने में तत्पर होना ही एकमात्र उपाय है। यही युद्ध, आतंक एवं परस्पर मानव के भय से मुक्त हो पाने के लिए पर्याप्त है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संतुलन ही सामाजिक एवं व्यवहारिक है तथा संतुलित व नियंत्रित है। यही प्रेमानुभूति योग्य क्षमता का साक्ष्य है।

“प्रमाण व सिद्धान्त ही निर्विवाद है।” वास्तविकताओं को इंगित कराना ही प्रमाण का तात्पर्य है। विश्लेषण प्रक्रिया ही सिद्धान्त है। यही सार्वभौमिक सत्य, सत्यता, नीति, नियन्त्रण, स्थिति,

परिस्थिति, जड़-चैतन्यात्मक पूर्णता त्रय प्रकटन-प्रक्रिया को स्पष्ट करता है। फलतः मानव जीवन चारों आयाम, दिशा व पाँचों स्थिति में विश्लेषित हुई है। यही “वाद त्रय” पूर्वक सह-अस्तित्ववाद को प्रस्थापित किया है। यही विश्लेषण मानव जीवन की परम गरिमापूर्ण मध्यस्थता को प्रमाणित किया है। मानव जीवन में प्रामाणिकता प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभूति ही है। आवश्यकीय सभी परिप्रेक्ष्यों एवं कोषों में मानव प्रमाणित होना ही प्रामाणिकता है। प्रामाणिकता का प्रसारण मानव जीवन में प्रसिद्ध है। यही मानव परम्परा को स्पष्ट करती है। मानव की परम्परा में निर्विवादिता ही अभयता, अभयता ही विश्वास, विश्वास ही सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व ही अखण्डता, अखण्डता ही सामाजिकता, सामाजिकता ही मानवीयता, मानवीयता ही मानव के लिए प्रमाण एवं सिद्धान्त, प्रमाण एवं सिद्धान्त ही निर्विवाद है।

“विश्वासपूर्ण जीवन में प्रगतिशील कार्यक्रम, विश्वास विहीनता पर्यन्त प्रतिक्रियावादी कार्यक्रम प्रसिद्ध है।” प्रगतिशीलता कार्यक्रम ही सतर्कता का द्योतक है जो समाधान निरन्तरता है। प्रगतिशीलता गुणात्मक परिवर्तन के क्रम में होती है। गुणात्मक परिवर्तन जागृति क्रम में है। मानव में विश्वास अमानवीयता से मानवीयता एवं मानवीयता से अतिमानवीयता क्रम ही है। मानवीयता से परिपूर्ण होने के अनन्तर ही प्रगतिशील कार्यक्रम आरम्भ होता है। यही अतिमानवीयता से परिपूर्ण होते तक संबद्ध रहेगा। विश्वास स्थापित मूल्यों में साम्य मूल्य है। विश्वास मूल्य की अनुभूति मानवीयता में ही होती है। विश्वास ही क्रम से पूर्ण मूल्यानुभूति पर्यन्त प्रगतिशीलता के लिए निष्ठा है। इसी क्रम में मानव में गुणात्मक परिवर्तन होता है। फलतः वह सतर्कता एवं

सजगता से परिपूर्ण होता है जो समाधान निरंतरता का आधार है। यही सामाजिकता को प्रकट करता है। साथ ही, उसको प्रमाणपूर्वक अक्षुण्ण बनाता है तभी जीवन का चतुर्दिग उदय होता है। यही अभ्युदय है। संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकसूत्रता ही चतुर्दिग उदय है। इनमें विषमता ही वर्ग समुदाय है। अभ्युदय विहीन जीवन सामाजिक सिद्ध नहीं होता है। अभ्युदय का प्रमाण ही स्थापित मूल्यों की अनुभूति है। अभ्युदय अर्थात् सर्वतोमुखी समाधान ही जीवन सफलता है। यही चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों में दश सोपानीय व्यवस्था की एकसूत्रता के लिए प्राणतत्व है अर्थात् मूल तत्व है। विश्वास विहीन प्रत्येक संबंध एवं संपर्क में दायित्व एवं कर्तव्य वहन सिद्ध नहीं होता है। दायित्व एवं कर्तव्य वहन की उपेक्षा अथवा तिरस्कारपूर्वक समाज संरचना नहीं होती है और न सामाजिकता ही सिद्ध होती है।

इन्द्रिय व्यापार एवं उत्पादन स्थूल क्रियाएं हैं। मन, वृत्ति, चित्त एवं बुद्धि की क्रियाशीलता एवं मूल्यानुभूति सूक्ष्म क्रियाएं हैं। स्थूल क्रियाएं सूक्ष्म क्रिया से अनुप्राणित एवं नियंत्रित हैं। उत्पादन से समृद्धि, व्यवहार से सह-अस्तित्व, विचार में समाधान एवं सत्य में अनुभूति चरितार्थ होना ही कारण क्रिया है। इसी चरितार्थता के लिए ही सम्पूर्ण प्रकार के अभ्यास हैं। चरितार्थता के अतिरिक्त अर्थात् इसके विपरीत जो कुछ भी क्रियाकलाप हैं वे सब अव्यवहारिक, अमानवीयता में गण्य है। स्थूल क्रियाओं का नियंत्रण एवं सूक्ष्म क्रियाओं में परिमार्जन एवं पूर्णता प्रसिद्ध है। चैतन्य जीवन में ही सूक्ष्म जीवन गण्य है। मन, वृत्ति एवं चित्त ही सूक्ष्म क्रिया है। बुद्धि एवं आत्मा कारण क्रिया है। चैतन्य जीवन सूक्ष्म एवं कारण क्रिया का सम्मिलित रूप है। अनुभव में पराभव नहीं है। उत्पादन एवं व्यवहार

में ही विभव एवं पराभव का परिचय होता है। व्यवहार एवं व्यवसाय में असफलता विचार व अनुभूति पूर्णता का लक्षण नहीं है। विचार पूर्णता केवल निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य ही है। विचारपूर्णता के लिए ही शिक्षा है जिसका स्थूल रूप ही उत्पादन एवं व्यवहार है। सत्य और सत्यता की ही अनुभूति होती है।

“उदय सहित उपलब्धियाँ होती है।” अनुभव से अधिक उदय होना प्रसिद्ध है। प्रत्येक उदय अनुमान क्रिया के लिए विशालता है। यही उदय जो अनुमानपूर्वक सन्निहित होता है इसके पूर्व में वह आगमक्रिया था ही। यह क्रम जीवन जागृति पर्यन्त होता है उसके (उदय अनुमान क्रिया) पूर्व अथवा अप्राप्ति एवं अज्ञान रहता है। जीवन संबंधी भ्रम व रहस्य एवं उत्पादन संबंधी अप्राप्ति मूलतः अज्ञान का ही द्योतक हैं। चैतन्य प्रकृति का अध्ययन जीवन को स्पष्ट करता है। जड़ प्रकृति का अध्ययन आकाँक्षा द्वय संबंधी वस्तु एवं सामग्रियों को उत्पन्न करने की क्षमता प्रदान करता है। यही भौतिकीय अध्ययन की उपलब्धि एवं मूल्य त्रयानुभूति चैतन्य प्रकृति की अध्ययन की गरिमा है। मूल्यानुभूति योग्य क्षमता ही व्यवहार चरितार्थता है। मूल्यानुभूति चैतन्य प्रकृति का विधिवत् अध्ययन है। चैतन्य प्रकृति मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि एवं आत्मा का संयुक्त रूप है। इसी का विश्लेषण हुआ है। प्रत्येक उदय प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभूति के लिए उत्प्रेरणा है। चैतन्य प्रकृति का परावर्तन ही व्यवहार एवं उत्पादन उसका प्रत्यावर्तन ही अनुभूति है। अध्ययन क्षमता चैतन्य क्रिया में स्पष्ट है। मानव का मूल रूप अध्ययन क्षमता ही है। अध्ययन क्षमता ही व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के रूप में प्रकट होती है। अध्ययन प्रामाणिकता को स्थापित करता है। प्रामाणिकता की परम्परा होती है। यही अध्ययन है। प्रमाण विहीनता प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का

सहायक तत्व नहीं है। यह अज्ञान एवं अक्षमता का ही द्योतक है। अक्षमता एवं अज्ञान का निवारण विधिवत् अध्ययन से होता है। उदय ही गुणात्मक परिवर्तन व परिमार्जन के लिए बाध्यता है। शिक्षा एवं व्यवस्था ही उदय के लिए समर्थ प्रेरणा है। सत्ता में सम्पृक्त जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति ही उदय सर्वस्व है। यह प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम क्रिया के रूप में ज्ञातव्य है। यही आद्यान्त वास्तविकता है। वास्तविकता का ही उदय होता है। उसके प्रति भ्रम होना मानव में अक्षमता का द्योतक है। प्रत्येक मानव की क्षमता परावर्तन, परिवर्तन एवं प्रत्यावर्तन के रूप में स्पष्ट है। प्रत्यावर्तन अनुभव के रूप में, परिवर्तन धन-ऋणात्मक रूप में तथा परावर्तन व्यवहार एवं उत्पादन के रूप में होता है। इससे अधिक मानव का प्रकटन नहीं है। गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक ही मानव क्रिया पूर्णता एवं आचरणपूर्णता से सम्पन्न होता है। यही उदय की आद्यान्त चरितार्थता है।

**“अप्रधान रूप में किया गया भोग ही उपयोग है।”** मानवीयता पूर्ण जीवन में संपूर्ण सदुपयोग अवरीयता के रूप में, दिव्य मानवीयता में नगण्यता के रूप में तथा अमानवीयता में अतिप्रधान रूप में ज्ञातव्य होना है। यही अमानवीयतावादी जीवन में अपव्ययता का प्रधान कारण है। विषय प्रमत्तता क्रूरता के लिए प्रधान कारण है। विषय प्रमत्तता सम्मोहनात्मक आवेश है। इसमें होने वाले व्यवधान क्रूरता में परिवर्तित होते हैं। इसी कारणवश भ्रमित मानव सामाजिक होना संभव नहीं हैं। व्यवहार की अपेक्षा में ही भोगों की प्रधानता एवं अप्रधानता सिद्ध होती है। व्यवहारिक शिष्टता एवं मूल्यों का उपेक्षापूर्वक किया गया भोग ही अपव्यय तथा उसमें भोग प्रवृत्ति ही प्रमत्तता है जो स्पष्ट है। शिष्टता पूर्वक ही संपूर्ण भोग संयत होता है फलतः अप्रधान होता है जो मानवीयता में सार्थक स्पष्ट है। यही

आसक्ति एवं अनासक्ति का तात्पर्य है। विषयों के प्रति आसक्ति एवं अनासक्ति एषणाओं के प्रति प्रवृत्ति एवं अप्रवृत्ति तथा अनुभूति के प्रति संकल्प ही प्रसिद्ध है।

**“आयोजनात्मक, प्रयोजनात्मक एवं योजनात्मक कार्यक्रम प्रसिद्ध हैं।”** आत्मीयतापूर्ण अर्थात् न्याय सम्मत पद्धति से किया गया सम्मेलनात्मक योजना ही आयोजन है। पूर्णता की अपेक्षा में या पूर्णतया परस्पर मिलन ही सम्मेलन है। आयोजनात्मक कार्यक्रम ही सामाजिक कार्यक्रम है। सामाजिक कार्यक्रम प्रधानतः संवेदनशीलता व संज्ञानीयता की अभिव्यक्ति है, यही प्रयोजन है। संज्ञानीयता ही आयोजन का प्रधान कारण है। संज्ञानीयता के अभाव में आयोजनात्मक कार्यक्रम सफल नहीं है। आयोजनात्मक कार्यक्रम ही सामाजिकता को स्पष्ट करता है। आयोजन मानव के चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों के अर्थ में चरितार्थ होती है। यही प्रमाण मूलक दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था होने से परंपरा है। प्रमाण मूलक न होने से वर्ग भावना की अभिव्यक्ति है। परम्परा में प्रमाण मूलक चिन्तन का होना अनिवार्य है। यही सफलता का द्योतक है। इसके अभाव में आयोजन नहीं है। आयोजन में व्यवहारिकता का निर्धारण होना ही प्रधान तत्व है। व्यवहारिकता अनुभवमूलक होने से ही सफल होता है। फलतः समाज संरचना स्पष्ट होता है अर्थात् संबंध एवं संपर्क के प्रति दायित्व एवं कर्तव्य निर्वाह होता है। फलतः समाज की अखण्डता एवं अक्षुण्णता सिद्ध होता है। आयोजन की चरितार्थता अखण्डता में ही है न कि विघटन में। संपूर्ण आयोजनायें धर्मीयता को प्रसारित करने के लिए बाध्य है। मानव धर्मीयता सार्वभौमिक है। मानव संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था के रूप में ही मानव धर्मीयता प्रसारित होता है।

योजनाएं उत्पादन-विनिमय के संबंध में होती हैं जो साधन नियोजन सहित परियोजना में परिवर्तित होता हैं। व्यवसाय में उत्पादन ही प्रमुख उद्देश्य है। आयोजन में विनियोग संबंधी, योजना में नियोजन संबंधी निश्चय, निर्णय, संभावना, व्यवहारिकता एवं प्रमाण सम्मत होना आवश्यक है। प्रमाण परम्परा पूर्वक ही आयोजनात्मक एवं योजनात्मक कार्यक्रम सफल होता है। आयोजनात्मक कार्यक्रम अर्थ के सदुपयोगात्मक एवं सुरक्षात्मक तथ्य को स्पष्ट करता है। यही आयोजन का मूल तत्व एवं मूल लक्ष्य है। इसे सफल बनाने के लिए ही ऐतिहासिक प्रेरणा भी सहायक होता है। इन ऐतिहासिक स्मरण परम्पराओं में सामाजिकता ही उत्प्रेरक तत्व है। वर्गीयता के आवेश से मानव का ऐतिहासिक सिद्ध होना संभव नहीं है। प्रत्येक आयोजन मानवीयता पूर्ण अथवा अतिमानवीयता पूर्ण संचेतना से ही सफल होता है अन्यथा असफल होता है।

**अभ्यास-समग्र की उपलब्धि क्रिया पूर्णता, आचरण पूर्णता ही है।**

इससे अधिक मानव के लिए उपलब्धियाँ शेष नहीं हैं। इनके अतिरिक्त और किसी प्रकार की सिद्धि की चर्चा रहस्यमयता ही है। रहस्यमयता की चर्चा रहस्योन्मूलन के लिए सहायक नहीं है। रहस्य से रहस्य का निराकरण नहीं है। यथार्थता की श्रृंखला में “अज्ञात” रहना संभव नहीं है। अज्ञातता रहस्य नहीं है। क्रम से मानव में ज्ञानोदय के उदय होने की संभावना है। सत्ता में संपृक्त जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति के अतिरिक्त और कोई वास्तविकता नहीं है। मानव जीवन जो जागृति क्रम में प्रत्यक्ष है, उनमें गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक क्रियापूर्णता एवं आचरण-पूर्णता सिद्ध होता है। उसके अतिरिक्त कल्पनात्मक श्रेष्ठ सिद्धि अथवा नेष्ट सिद्धि दोनों ही

सामाजिकता को सिद्ध करने में समर्थ नहीं हैं। हिंसक एवं अनिष्टकारी अथवा प्रलोभनात्मक प्रक्रिया या उसके लिए किया गया अभ्यास भी अमानवीयता ही है। यही रहस्यमयता है। ऐसी सिद्धियों के प्रति तीव्र इच्छा के मूल में स्वयं में रहस्यता का होना आवश्यक है। स्वयं में रहस्यता के बिना रहस्यता प्रिय होना संभव नहीं है। स्वयं में रहस्यता अमानवीयता में विजय पाने, आक्रमण करने एवं संग्रह करने के संदर्भ में होता है। स्वयं के जीवन, जीवन के क्रम एवं जीवन के कार्यक्रम तथा उसकी प्रतिष्ठा के संदर्भ में पूर्ण बोध न होना ही इसका कारण है।

भौतिकवादी चिन्तन के आनुषंगिक जो रासायनिक एवं भौतिक प्रक्रियाएं विश्लेषण पूर्वक स्पष्ट हुई हैं, उनकी सीमा में मानव का विश्लेषण न होना, साथ ही भौतिकता को जीवन-सर्वस्व स्वीकार किया जाना अमानवीयता के लिए परमावधि प्रोत्साहन सिद्ध हुआ है। भौतिकवादी चिन्तन जड़-प्रकृति का अध्ययन है। मानव जड़ प्रकृति में सीमित नहीं है। जड़-प्रकृति पर चैतन्य प्रकृति का अधिकार एक वास्तविकता है। चैतन्य प्रकृति के स्पष्ट अध्ययन के बिना मानव का अध्ययन अपूर्ण है। अपूर्ण अध्ययन पूर्वक पूर्ण जीवन को अभिव्यक्त करना संभव नहीं। यही अपूर्णता वर्ग में परिणत होता है। अपूर्णता सार्वभौमिक होना संभव नहीं है। अस्तु, मानवीयतापूर्ण जीवन पद्धति प्रणाली एवं नीतिपूर्वक ही मानव अखण्डता का अनुभव करता है।

**“चिदानन्द, आत्मानन्द एवं ब्रह्मानन्द ही परमावधि उपलब्धि है।”** यही अभ्यास का संपूर्ण लक्ष्य है। चिदानन्द का प्रधान लक्षण अभय है। यही सजगता सतर्कता की सर्वोच्च उपलब्धि है। ये सब क्रियापूर्णता के द्योतक हैं। इसका प्रत्यक्ष रूप ही सामाजिकता है। अभाव के अभाव में ही चिदानन्दानुभूति होती है।

चिदानन्द का आधार समाधान ही है। क्रियापूर्णता में समाधान स्वभाव सिद्धि है। विधिवत् अभ्यास की प्रथमोपलब्धि चिदानंद है। चिदानन्द ही पूर्ण सामाजिकता को प्रकट करता है अथवा चिदानन्द की उपलब्धि पूर्ण सामाजिकता है। चिदानन्द के बिना अथवा चिदानन्द में अनुगमन के बिना सामाजिकता की अभिव्यक्ति नहीं है अथवा सामाजिकता का सार्वभौम होना संभव नहीं है।

आत्मानंद जीवन में एक महत उपलब्धि है। यह प्रत्यावर्तन सिद्धि है। आत्मानंद प्रत्यावर्तन का प्रधान लक्षण है। मानवीयतापूर्ण जीवन से समृद्ध होने के अनन्तर ही प्रत्यावर्तन प्रक्रिया सम्पन्न होता है। आत्मानुशासित जीवन का प्रतिष्ठित होना ही प्रत्यावर्तन का प्रधान लक्षण है। आत्मानुशासित जीवन स्वतंत्रतापूर्वक मानवता को अभिव्यक्त करता है। साथ ही देव मानव पद में प्रतिष्ठित होता है। देव मानव में निवृत्ति परिचय होता है। प्रत्यावर्तन के अनन्तर ही मध्यस्थ जीवन स्थापित होता है। यह स्वतंत्रता का प्रधान कारण है। मानव स्वतंत्रता के लिए अनादिकाल से प्रतीक्षारत है। प्रत्यावर्तन के अनन्तर स्वभावतः मानव स्वतंत्र होता है। यही देव मानव पद है। देवमानव मानव के लिए मार्गदर्शक होता है। प्रत्यावर्तन के अनन्तर ही आत्मा से बुद्धि, बुद्धि से चित्त, चित्त से वृत्ति एवं वृत्ति से मन अनुशासित होता है। मन से मेधस, मेधस से इंद्रिय व्यापार संपन्न होता है। इस पद्धति से आत्मानुशासित जीवन प्रकट होता है।

**“ब्रह्मानंद ही अभ्यास की परमोपलब्धि है अथवा अभ्यास का चरमोत्कर्ष है।”** ब्रह्मानंद ही सत्तामयता में अनुभूति है। यही जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का अभीष्ट है। चैतन्य प्रकृति का अंतिम जागृति सोपान यही है। देवमानवीयता से दिव्यमानवीयता में यही संक्रमण है अथवा आचरणपूर्णता में संक्रमण है आचरणपूर्णता

का प्रधान लक्षण ही ब्रह्मानंद है। ऐसे ब्रह्मानुभूति सम्पन्न व्यक्ति ही आप्तपुरुष हैं। इनमें आप्तकामना स्वभाव रूप में निष्पन्न होता है। यही मध्यस्थ जीवन की सर्वोच्च स्थिति है। ऐसी इकाईयाँ संसार के लिए मार्गदर्शक, पथदर्शक एवं जीवन के रहस्योन्मूलक होता है।

**“चिदानंद स्थूल एवं सूक्ष्म जीवन की निर्विरोधिता में, आत्मानंद स्थूल-सूक्ष्म-कारण जीवन में एकसूत्रता के रूप में तथा ब्रह्मानंद सत्तामयता में सह-अस्तित्व सहज अनुभूति के रूप में प्रमाणित है।”** चिदानंद सर्वसुलभ होना ही आत्मानंद एवं ब्रह्मानंद की संभावना है। मानवीयतापूर्ण जीवन में चिदानंद, देव मानवीयतापूर्ण जीवन में आत्मानंद एवं दिव्य मानवीयतापूर्ण जीवन में ब्रह्मानंद प्रधान विधि से चरितार्थ होता है। चिदानंद एवं आत्मानंद ब्रह्मानंदानुभूति में समाये रहते हैं। अर्थात् ब्रह्मानुभूति में सहजतः मानवीयता एवं देव मानवीयता अभिव्यक्त होती है। चिदानंद के सर्वसुलभ होने की संभावना है। मानवीयतापूर्ण समाज संरचना, शिक्षा एवं व्यवस्था आचरण ही उसके लिए आवश्यकीय तत्व है। मानवीयता मानव का स्वत्व है। स्वत्व का व्यवहृत होना न होना शिक्षा एवं व्यवस्था पर, शिक्षा एवं व्यवस्था धर्मनैतिक एवं राज्यनैतिक संस्थाओं की क्षमता पर, धर्मनैतिक एवं राज्यनैतिक संस्थाओं की क्षमता उपलब्ध दर्शन पर और दर्शन भौतिक-बौद्धिक-आध्यात्मिकता पर आधारित होना पाया जाता है। अध्यात्म चिंतन सत्तामयता को स्पष्ट करने के लिए, बौद्धिक चिंतन (मनोवैज्ञानिक चिंतन) संवेदनशीलता एवं चैतन्य जीवन का विश्लेषण करने में तथा भौतिक चिंतन रासायनिक एवं भौतिक क्रिया का निरीक्षण, परीक्षण एवं सर्वेक्षण करने में क्रम से ज्ञान एवं अनुभूति, दर्शन एवं अनुभूति, प्रयोग एवं अनुभूति होती है।

## योगाभ्यास जागृति के अर्थ में चरितार्थ होता है ।

यह मानवीयतापूर्ण जीवन के साथ आरंभ होता है जो श्रवण, मनन एवं निधिध्यासपूर्वक अथवा धारणा, ध्यान एवं समाधिपूर्वक चरितार्थ होता है। जीवन चरितार्थता ही आचरणपूर्णता है। योगाभ्यास शास्त्राध्ययन, उपदेश एवं स्वप्रेरणा का योगफल है। इन सब में प्रामाणिकता का होना अनिवार्य है। मानवीयतापूर्ण जीवन के अनन्तर वांछित वस्तु देश एवं तत्व में चित्त-वृत्तियों का संयत होना पाया जाता है। यही धारणा है। धारणा पर पूर्णाधिकार के अनन्तर उसके सारभूत भाग में अथवा वांछित भाग में चित्त-वृत्ति का केन्द्रीभूत होना पाया जाता है जो ध्यान का द्योतक है। ध्येय के अर्थ मात्र में अर्थात् ध्येय के मूल्य में चित्त-वृत्ति एवं संकल्प का निमग्न होना ही समाधि है। यही सत्तामयता में अनुभूति है। यही योगाभ्यास की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। इसी क्रम के अर्थ में श्रवण, मनन एवं निधिध्यास चरितार्थ होता है। श्रवण का तात्पर्य धारणा से है। मनन का तात्पर्य निष्ठा एवं ध्यान से है। निधिध्यास का तात्पर्य सहज निष्ठा एवं सहज समाधि है। सहज समाधि का तात्पर्य सत्ता में अनुभूतिमयता की निरंतरता या अक्षुण्णता है। अक्षुण्णता प्रत्येक क्रियाकलाप एवं कार्यक्रम में भी स्थिर रहने के अर्थ में है। यही भ्रममुक्ति है। योगाभ्यास पूर्णतया सामाजिक एवं व्यवहारिक है। अव्यवहारिकता एवं असामाजिकता पूर्वक योगाभ्यास होना संभव नहीं है। मानवीयता के अनन्तर ही अभ्युदय का उदय होता है। पूर्णता पर्यन्त इस उदय का अभाव नहीं है। उदय एवं अभ्यास का योगफल ही गुणात्मक परिवर्तन है जो योगाभ्यास पूर्वक चरितार्थ होता है।

व्यायाम, आसन व प्राणायाम योगाभ्यास के लिए सहायक

हैं। शरीर का स्वेच्छानुरूप उपयोग करने, स्वस्थ रखने के लिए ये प्रक्रियाएं आवश्यक हैं। वातावरण अभ्यास के लिए सहज उपलब्धि है। कृत्रिम वातावरण ही अतिप्रभावशाली है जिसका निर्माण मानव ही करता है। कृत्रिम वातावरण मानवीयतापूर्ण या अमानवीयता भेद से दृष्टव्य है। कृत्रिम वातावरण के लिए शिक्षा एवं व्यवस्था प्रधान तत्व हैं। प्रकाशन, प्रदर्शन व प्रचार भी उसी के अनुरूप संपन्न होता है। विपरीत वातावरण अर्थात् अमानवीय वातावरण में योगाभ्यास होने के लिए स्वयं मानवीयता से परिपूर्ण होना अनिवार्य हो जाता है। ऐसी स्थिति में यह साधनों में गण्य है। योगाभ्यास का पूर्व साधन या मूल साधन मानवीयता ही है। मानवीयतापूर्ण जीवन में वैचारिक समत्व स्वभावतः सिद्ध होता है जिसमें कायिक एवं वाचिक समत्व प्रत्यक्ष होता है। स्थापित मूल्यानुभूति एवं उसकी निरंतरता ही योगाभ्यास की अर्थवत्ता है। चैतन्य प्रकृति में ही अनुभव योग्य क्षमता योगाभ्यासपूर्वक स्थापित होती है। मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि एवं आत्मा में ही अनुभव योग्य क्षमता जागृत होती है। ये सब चैतन्य इकाई में होने वाली अविभाज्य क्रियाएं हैं। अनुभूति मूल्यों में, से, के लिए होती है। मन एवं वृत्ति के योग से उपयोगिता मूल्यानुभूति, वृत्ति और चित्त के योग से उपयोगिता एवं कला मूल्यानुभूति, चित्त और बुद्धि के योग से शिष्ट मूल्यानुभूति, बुद्धि व आत्मा के योग से स्थापित मूल्यानुभूति होती है। फलतः सत्तामयता में अनुभूति योग्य क्षमता सिद्ध होती है। यही सत्तामयता में संपृक्तता की अनुभूति है जो ब्रह्मानुभूति है। यह आत्मा में होने वाली विशेषानुभूति है। व्यापकता एवं विशालता में ही अनुभूतियाँ हैं।

साम्य सहज एवं पूर्ण भेद से शिष्टता, विशाल, विशालतर एवं

विशालतम भेद से स्थापित मूल्य हैं जो इस प्रकार है :-

विशाल मूल्य	साम्य शिष्टता
1. ममता	- आदर
2. वात्सल्य	- सहजता
3. सम्मान	- सौहार्द्रता
विशालतर मूल्य	सहज शिष्टता
1. कृतज्ञता	- सौम्यता
2. श्रद्धा	- पूज्यता
3. गौरव	- सरलता
विशालतम मूल्य	पूर्ण शिष्टता
1. स्नेह	- निष्ठा
2. विश्वास	- सौजन्यता
3. प्रेम	- अनन्यता

**अलंकार जीवन जागृति क्रम में एक अनिवार्य भाग है।** अलंकार यश के अर्थ में प्रायोजित होता है। जीवन जागृति के अर्थ में प्रायोजित है। यश जागृति के लिए प्रेरणास्रोत है। यश प्रेरणा में ही चरितार्थ है। मानव जीवन में भाषा, भाव, संस्कृति एवं सभ्यता का यश होना प्रसिद्ध है। इनकी प्रामाणिकता ही इनका अलंकार है। जीवन सतर्कता एवं सजगता में, भाषा तात्त्विकताभिव्यक्ति अथवा रसाभिव्यक्ति में, भाव मौलिकता में, संस्कृति मानवीयता में एवं सभ्यता गुणात्मक परिवर्तन में अलंकृत है। अलंकार की चरितार्थता जागृति के ही अर्थ में होती है। जागृति गुणात्मक परिवर्तन ही है। प्रामाणिकता ही अलंकार है। अलंकार यश का होना स्वाभाविक है।

उसकी कीर्तिमानता ही परम्परा है। प्रमाण विहीन परम्परा का परिवर्तन होना भावी है। प्रमाण केवल प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभूति सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन ही है।

**रस जीवन में अविभाज्य तत्व है।** रस ही मूल्य है। जीवन का मूल्य मूल्यानुभूति योग्य क्षमता है। मूल्य विहीन जीवन रसानुभूति करने में सक्षम नहीं होता है। इसी सत्यतावश उसे जन-सामान्य, सहज-सुलभ सिद्ध करने के लिए रसानुसंधान एवं उसके लिए कार्यक्रम है। स्थापित मूल्य ही मूलतः रस हैं। रस का तात्पर्य ही जीवनसार से है। उसमें से पूर्ण मूल्य ही पूर्ण रस है। यही रसैश्वर्य है। इसे जीवन में प्रत्येक मानव अनुभव करना चाहता है। रसानुभूति के लिए जीवन में संपूर्ण कार्यक्रम तथा इसी के लिए प्रदर्शन क्रियाकलाप भी सहायक है। इसी में नाट्य-अभिनय, नृत्य और प्रहसन भी सहायक हैं। प्रधानतः साहित्य ही इसका माध्यम है। रसानुभूति रति शब्द से इंगित है। मूल्यानुभूति ही अंततोगत्वा तात्त्विकता एवं रति है। यही साहित्य की मौलिकता, उपादेयता एवं चरितार्थता है। सत्यता ही तात्त्विकता है। मूल्य और मूल्यानुभूति से अधिक तात्त्विकता कुछ भी नहीं है। यही रसानुभूति है। साहित्य द्वारा इसी सत्यता के उद्घाटन की अपेक्षा है। सत्यता के उद्घाटन हेतु प्रयुक्त, प्राप्त एवं स्थित साधन ही साहित्य है। ऐसे साधन मानव में शब्दादि पाँच रूपों में हैं। उनमें से शब्द ही वरीयतम साधन है। उसकी तुलना में दूर-दूर तक फैलने व फैलाने योग्य उपयुक्त साधन और कोई नहीं है। शब्द ही भाषा, साहित्य, काव्य, संहिता एवं सूत्र के रूप में प्रायोजित होता है। शब्द, भाषा विज्ञान से सुसंस्कृत होकर भाषा के रूप में अवतरित होता है। तब वह सार्थक होता है। सार्थकता ही भाषा है। भाषा का तात्पर्य ही है भासाभास एवं प्रतीति की व्यंजना। साथ ही, उसमें भावग्राही व

भाव प्रदायी व्यंजनीयता सिद्ध होती है। मौलिकता ही भाव है। व्यंजनीयता ही संवेदनशीलता है। संवेदनशीलता ही व्यंजनोत्पादीय एवं व्यंजनारत है। अस्तु, भाषा में भाव की, भाषा-भाव में शैली एवं भाषा-भाव-शैली में अलंकार एवं रस की, भाषा-भाव-शैली-अलंकार एवं रस में भाषा विज्ञान तथा भाषा विज्ञान में भाषा के आश्लिष्ट एवं संश्लिष्ट भेद-प्रभेद से साहित्य रचनाएं हैं। साहित्य परम्परा में मौलिक अक्षुण्णता यह है कि मानव की परस्परता में स्थित या स्थिति-निर्मित जो रसानुभूति की वाँछाएं-आकाँक्षाएं हैं वे भावपूर्ण वाङ्मय मूर्तियों की सम्प्रेषण एवं स्वागत अथवा व्यंजित होने एवं व्यंजनोत्पादन क्रिया-प्रक्रियापूर्वक समय सन्निवेशात्मक साधन सहित व्यंजनास्थल में रसरोपण एवं पोषण में रत है। रत का गन्तव्य रति ही है। रति केवल अनुभवात्मक एवं सान्निध्यात्मक ही चरितार्थ हुई है। रस रति में, से, के लिए ही है। इन दोनों प्रकार की रति की मौलिकता को व्यक्त करना और उसे सर्वसुलभ बनाना ही साहित्य का आद्यान्त उद्देश्य है। सान्निध्यात्मक रति संबंध एवं संपर्क मूलक है। यह शिष्टता पूर्वक रसानुभूति का क्रम है। अनुभवात्मक रति स्थापित मूल्यानुभूति के अनंतर शिष्टता एवं सामाजिकता को अभिव्यक्त करती है। यही साहित्य का मूल तत्व है। रसविहीन साहित्य निरर्थक है। रसाभिव्यक्ति होना ही साहित्य में आद्यान्त गरिमा एवं चरितार्थता है। रस ही जीवन सर्वस्व है। मानव जीवन चरितार्थता के लिए अनवरत प्यासा है। साहित्य के माध्यम से रस का मुखरित होना पाया जाता है। संयोग विकास जागृतिपूर्वक रसानुभूति होती है। जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य का अनुभव ही रस है। रसानुभूति योग्य प्रेरणा ही साहित्य है। मानव जीवन में पांडित्य पूर्वक ही साहित्य स्पष्ट है। यही जीवन दर्शन है। जीवन दर्शन विहीन साहित्य सार्थक

नहीं है। जीवन दर्शन ही मानव एवं मानवता को स्थापित करता है। यह रसानुभूति का प्रथम सोपान है। इसी सोपान में रस में तन्मयता सर्वसुलभ होती है। इसी रसमयता में अधिकार पाने की श्रृंखला में ही देव मानवीयता एवं दिव्य मानवीयता सिद्ध होती है। रसानुभूति में विषमता का अत्याभाव होता है। ऐसे रस नौ स्थापित मूल्यों के रूप में अभिप्रेत हैं। ये सभी मूल्यात्मक रस मानव जीवन में ही चरितार्थ होते हैं। इनमें प्रसक्ति ही रसिकता है। रसिकता गुणात्मक परिवर्तन का द्योतक है न कि कामुकता का। कामुकता गुणात्मक परिवर्तन के लिए सहायक नहीं है। कामुकता परतंत्रित आवेश है। रसानुभूति स्वतंत्राभिव्यक्ति है। रसानुभूति सामाजिक, व्यवहारिक एवं प्रामाणिक है जबकि कामुकता असामाजिक, अव्यवहारिक एवं अप्रामाणिक है। प्रामाणिकता प्रामाणिक क्रियापूर्णता एवं आचरण पूर्णता के संदर्भ में है। वह केवल गुणात्मक परिवर्तन है। जीवन सर्वस्व रसानुभूति में प्रमाणित है न कि कामुकता में। संपूर्ण प्रकार के अभ्यास की चरितार्थता रसानुभूति में ही है। यही सफल जीवन है। संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्थापूर्वक इसके सर्वसुलभ होने में ही भूमि स्वर्ग, मानव देवता, धर्म सफल एवं नित्य मंगल है।

नित्य मंगल हो।

नित्य उत्सव हो।



## परिशिष्ट

**अनुभव समुच्चय :** ब्रह्मानुभूति में परमानन्द, आत्मानुभूति में आनन्द, बुद्धि की अनुभूति में संतोष, चित्त की अनुभूति में शांति, वृत्ति की अनुभूति में सुख

### चतुष्टय

अवस्था चतुष्टय : पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था

आयाम चतुष्टय : उत्पादन, व्यवहार, विचार, अनुभव

भय चतुष्टय : प्राणभय, पद भय, धन भय, मान भय

विषय चतुष्टय : आहार, निद्रा, भय, मैथुन

चतुर्दिग उदय : संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था

जीवन लक्ष्य : सुख, शांति, संतोष, आनन्द

### त्रय

ऐषणा त्रय : पुत्रेषणा, वित्तेषणा, लोकेषणा

कार्यक्रम त्रय : आर्थिक कार्यक्रम, सुरक्षात्मक कार्यक्रम, सदुपयोगात्मक कार्यक्रम

क्रिया त्रय : भौतिक क्रिया, बौद्धिक क्रिया, रासायनिक क्रिया

काल त्रय : भूत, भविष्य, वर्तमान

चक्र त्रय : प्राण पद चक्र, भ्रँति पद चक्र, देव पद चक्र

तथ्य त्रय : परिणाम, निर्णय प्रक्रिया के कारण, गुण, गणित ही आद्यान्त आधार है । यही

निर्णायक तथ्य त्रय है ।

“ता” त्रय : मानवीयता, देव मानवीयता, दिव्य मानवीयता

नियम त्रय : सामाजिक नियम, प्राकृतिक नियम, बौद्धिक नियम

नीति त्रय : धर्म नीति, अर्थ नीति, राज्य नीति

प्रतिष्ठा त्रय : अनुभव में परमानन्द प्रतिष्ठा, विचार में समाधान प्रतिष्ठा, व्यवहार में प्रेम प्रतिष्ठा

प्रमाण त्रय : व्यवहार, प्रयोग, अनुभूति

पूर्णता त्रय : गठन पूर्णता, क्रिया पूर्णता, आचरण पूर्णता

मूल्य त्रय : स्थापित मूल्य, मानव मूल्य, जीवन मूल्य

व्यवहार त्रय : कायिक, वाचिक, मानसिक

“वाद” त्रय : समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद, अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

शक्ति त्रय जागरणः इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति, ज्ञान शक्ति का जागरण

उन्माद त्रय : लाभोन्माद, भोगोन्माद, कामोन्मादे

पंच कोटि मानवः पशु मानव, राक्षस मानव, मानव, देव मानव, दिव्य मानव

पाँच स्थितियाँ : व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, अंतर्राष्ट्र

मानव लक्ष्य : समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व

## विकार

षड् विकार (भ्रम की स्थिति में) :

- (i) काम - सम्मोहन पूर्वक
- (ii) क्रोध - विरोधवश
- (iii) लोभ - संग्रहवश
- (iv) मोह - रहस्यतावश
- (v) मद - अभिमानवश
- (vi) मात्सर्य - असह-अस्तित्ववश व शोधवश

षड् विकार का गुणात्मक परिवर्तन (मानवीयता की स्थिति में) :

- (i) काम - शिष्टतापूर्ण लज्जा में
- (ii) क्रोध - धैर्य साहस में
- (iii) लोभ - उदारतापूर्वक दया में
- (iv) मोह - अर्हतापूर्वक अपेक्षा में
- (v) मद - सम्मानाभिव्यक्ति सहित कृतज्ञता में
- (vi) मात्सर्य - सह-अस्तित्वपूर्ण अभयता में

## प्रकाशित व प्रकाशनाधीन प्रबन्ध

“अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन” के रूप में ‘मध्यस्थ दर्शन’ सह-अस्तित्ववाद है। इसके प्रणेता एवं लेखक श्री ए. नागराज, अमरकण्टक हैं। इसमें अस्तित्व दर्शन को विविध प्रकार से स्पष्ट किया गया है।

### दर्शन

1. मानव व्यवहार एवं दर्शन (प्रकाशित)
2. मानव अनुभव दर्शन (प्रकाशित)
3. मानव अभ्यास दर्शन (प्रकाशित)
4. मानव कर्म दर्शन (प्रकाशित)

### शास्त्र

1. व्यवहारवादी समाजशास्त्र (प्रकाशित)
2. आवर्तनशील अर्थचिंतन (प्रकाशित)
3. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान (प्रकाशित)

### वाद

1. समाधानात्मक भौतिकवाद (प्रकाशित)
2. व्यवहारात्मक जनवाद (प्रकाशित)
3. अनुभवात्मक अध्यात्मवाद (प्रकाशित)

### योजना

1. जीवन विद्या योजना (प्रकाशनाधीन)
2. मानव संचेतनावादी शिक्षा-संस्कार योजना (प्रकाशनाधीन)
3. परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था योजना (प्रकाशित)

### अन्य

1. परिभाषा संहिता (प्रकाशित)
2. जीवन विद्या - एक परिचय (प्रकाशित)
3. अस्तित्व एवं अस्तित्व में परमाणु का विकास (प्रकाशित)
4. मानवीय संविधान का प्रारूप (प्रकाशित)
- ★ जीवन विद्या गीत (लेखक-प्रदीप पूरक) (प्रकाशित)